॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

गृहस्थमें कैसे रहें ?

विषय-सूची

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

गृहस्थमें कैसे रहें ?

रुद्रो मुण्डधरो भुजङ्गसहितो गौरी तु सद्भूषणा
स्कन्दः शम्भुसुतः षडाननयुतस्तुण्डी च लम्बोदरः।
सिंहक्रेलिममूषकं च वृषभस्तेषां निजं वाहन-
मित्थं शम्भुगृहे विभिन्नमतिषु चैक्यं सदा वर्तते॥

भगवान् शंकर मुण्डमाला एवं सर्प धारण किये हुए रहते हैं और पार्वती सुन्दर-सुन्दर आभूषण धारण किये हुए रहती हैं। शंकरके पुत्र कार्तिकेय छः मुखवाले तथा गणेश लम्बी सूँड़ और बड़े पेटवाले हैं। भगवान् शंकर आदिके अपने-अपने वाहन—बैल, सिंह, मोर और मूषक भी आपसमें एक-एकका भक्षण करनेवाले हैं। ऐसा होनेपर भी भगवान् शंकरके विभिन्न (परस्परविरुद्ध) स्वभाववाले परिवारमें सदा एकता रहती है। [इसी प्रकार गृहस्थमें विभिन्न स्वभाववालोंके साथ अपने अभिमान और सुखभोगका त्याग करके दूसरोंके हित और सुखका भाव रखते हुए आपसमें प्रेमपूर्वक एकता रहनी चाहिये।]

(१) गृहस्थ-धर्म

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मृष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

'घरमें सब सुखी हैं, पुत्र बुद्धिमान् हैं, पत्नी मधुरभाषिणी है, अच्छे मित्र हैं, अपनी पत्नीका ही संग है, नौकर आज्ञापरायण हैं, प्रतिदिन अतिथि-सत्कार एवं भगवान् शंकरका पूजन होता है, पवित्र एवं सुन्दर खान-पान है और नित्य ही सन्तोंका संग किया जाता है—ऐसा जो गृहस्थाश्रम है, वह धन्य है!'

प्रश्न—विवाह क्यों करें ? क्या विवाह करना आवश्यक है ?

उत्तर—हमारे यहाँ दो तरहके ब्रह्मचारी होते हैं—नैष्ठिक और उपकुर्वाण। जो आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे 'नैष्ठिक ब्रह्मचारी' कहलाते हैं और जो विचारके द्वारा भोगेच्छाको नहीं मिटा पाते और केवल भोगेच्छाको मिटानेके लिये ही विवाह करते हैं, वे 'उपकुर्वाण ब्रह्मचारी' कहलाते हैं। तात्पर्य है कि जो विचारके द्वारा भोगेच्छाको न मिटा सके, वह विवाह करके देख ले, जिससे यह अनुभव हो जाय कि यह भोगेच्छा भोग भोगनेसे मिटनेवाली नहीं है। इसलिये गृहस्थके बाद वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रममें जानेका विधान किया गया है। सदा गृहस्थमें ही रहकर भोग भोगना मनुष्यता नहीं है।

जिसके मनमें भोगेच्छा है अथवा जो वंश-परम्परा चलाना चाहता है और (वंश-परम्परा चलानेके लिये) उसका कोई भाई नहीं है, उसको केवल भोगेच्छा मिटानेके उद्देश्यसे अथवा वंश-परम्परा चलानेके लिये विवाह कर लेना चाहिये। अगर उपर्युक्त दोनों इच्छाएँ न हों तो विवाह करनेकी जरूरत नहीं है। शास्त्रोंमें निवृत्तिको सर्वश्रेष्ठ बताया गया है—'**निवृत्तिस्तु महाफला।**'

प्रश्न—कलियुगमें तो संन्यास लेना मना किया गया है, अतः मनुष्य निवृत्ति कैसे करे ?

उत्तर—कलियुगमें संन्यास लेना इसलिये मना किया गया है कि कलियुगमें संन्यास-धर्मका पालन करनेमें बहुत कठिनता पड़ती है, जिससे मनुष्य ठीक तरहसे संन्यास-धर्मको निभा नहीं सकता। अतः जैसे सरकारी कर्मचारी नौकरीसे रिटायर होते हैं, ऐसे ही मनुष्यको घरसे रिटायर हो जाना चाहिये और बेटों-पोतोंको

काम-धंधा सौंपकर घरमें रहते हुए ही भजन-स्मरण करना चाहिये। यदि बेटे चाहते हों तो घरसे केवल भोजन, वस्त्र आदि निर्वाहमात्रका सम्बन्ध रखना चाहिये। यदि बेटे न चाहें तो निर्वाहमात्रका सम्बन्ध भी छोड़ देना चाहिये। निर्वाह कैसे होगा, इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि—

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिन्ता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

प्रश्न—गृहस्थका खास धर्म क्या है?

उत्तर—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमोंकी सेवा करना गृहस्थका खास धर्म है; क्योंकि गृहस्थ ही सबका माँ-बाप है, पालक है, संरक्षक है अर्थात् गृहस्थसे ही ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी उत्पन्न होते हैं और पालित एवं संरक्षित होते हैं। अतः चारों आश्रमोंका पालन-पोषण करना गृहस्थका खास धर्म है।

अतिथि-सत्कार करना; गाय-भैंस, भेड़-बकरी आदिको सुख-सुविधा देना; घरमें रहनेवाले चूहे आदिको भी अपने घरका सदस्य मानना; उन सबका पालन-पोषण करना गृहस्थका खास धर्म है। ऐसे ही देवता, ऋषि-मुनिकी सेवा करना, पितरोंको पिण्ड-पानी देना, भगवान्‌की विशेषतासे सेवा (भजन-स्मरण) करना गृहस्थका खास धर्म है।

प्रश्न—गृहस्थाश्रममें कैसे रहना चाहिये?

उत्तर—यह मनुष्य-शरीर और इसमें भी गृहस्थ-आश्रम उद्धार करनेकी पाठशाला है। भोग भोगने और आराम करनेके लिये यह मनुष्य-शरीर नहीं है। *'एहि तन कर फल बिषय न भाई'* (मानस, उत्तर० ४४।१)। शास्त्रविहित यज्ञ आदि कर्म करके ब्रह्मलोक आदि लोकोंकी प्राप्ति करना भी खास बात नहीं

है; क्योंकि वहाँ जाकर फिर पीछे लौटकर आना ही पड़ता है—'**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनः**' (गीता ८। १६)। अतः प्राणिमात्रके हितकी भावना रखते हुए गृहस्थ-आश्रममें रहना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार तन, मन, बुद्धि, योग्यता, अधिकार आदिके द्वारा दूसरोंको सुख पहुँचाना चाहिये। दूसरोंकी सुख-सुविधाके लिये अपने सुख-आरामका त्याग करना ही मनुष्यकी मनुष्यता है।

प्रश्न—गृहस्थमें काम-धंधा करते हुए जो हिंसा होती है, उससे छुटकारा कैसे हो?

उत्तर—गृहस्थमें रोज ये पाँच हिंसाएँ होती हैं—(१) जहाँ रसोई बनती है, वहाँ आगमें चींटी आदि छोटे-छोटे जीव मरते हैं, लकड़ियोंमें रहनेवाले जीव मरते हैं, आदि। (२) जहाँ जल रखते हैं, वहाँ घड़ा इधर-उधर करने आदिसे भी जीव मरते हैं। (३) झाड़ू लगाते समय बहुत-से जीव मरते हैं। (४) चक्कीमें अनाज पीसते समय भी बहुत-से जीव पीसे जाते हैं। (५) ऊखलमें चावल आदि कूटते समय भी जीव मरते हैं। इन हिंसाओंसे छूटनेके लिये गृहस्थको प्रतिदिन बलिवैश्वदेव, पंचमहायज्ञ करना चाहिये। जो सर्वथा भगवान्‌के ही शरण हो जाता है, उसको यह हिंसा नहीं लगती। वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

प्रश्न—हम चक्की नहीं चलाते, धान नहीं कूटते तो हमें हिंसा नहीं लगेगी?

उत्तर—आप पीसा हुआ आटा, कूटा हुआ धान अपने काममें लेते हैं तो उस आटेको पीसनेमें, धानको कूटनेमें जो हिंसा हुई है, वह आपको लगेगी ही।

प्रश्न—खेतीमें अनेक जीवोंकी हिंसा होती है, तो क्या किसान खेती न करे?

उत्तर—खेती जरूर करे, पर खयाल रखे कि हिंसा न हो। किसानके लिये खेती करनेका विधान होनेसे उसको पाप कम लगता है, अत: उसको पापसे डरकर अपने कर्तव्यका त्याग नहीं करना चाहिये। हाँ, जहाँतक बने, हिंसा न हो, ऐसी सावधानी अवश्य रखनी चाहिये।

प्रश्न—आजकल किसानलोग फसलकी सुरक्षाके लिये जहरीली दवाएँ छिड़कते हैं तो क्या यह ठीक है?

उत्तर—किसानको यह काम कभी नहीं करना चाहिये। पहले लोग ऐसी हिंसा नहीं करते थे तो अनाज सस्ता मिलता था। आजकल हिंसा करते हैं तो अनाज महँगा मिलता है। दीखनेमें तो ऐसा दीखता है कि जीवोंको मार देनेसे अनाज अधिक होता है, पर इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

प्रश्न—शास्त्रोंमें गृहस्थपर पाँच ऋण बताये गये हैं—पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण, भूतऋण और मनुष्यऋण। इनमेंसे पितृऋण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है?

उत्तर—माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी, नाना-नानी, परनाना-परनानी आदिके मरनेपर जो कार्य किये जाते हैं, वे सब 'प्रेतकार्य' हैं और परम्परासे श्राद्ध-तर्पण करना, पिण्ड-पानी देना आदि जो कार्य पितरोंके उद्देश्यसे किये जाते हैं, वे सब 'पितृकार्य' हैं। मरनेके बाद प्राणी देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, भूत-प्रेत, वृक्ष-लता आदि किसी भी योनिमें चला जाय तो उसकी 'पितर' संज्ञा होती है।

माता-पिताके रज-वीर्यसे शरीर बनता है। माताके दूधसे और पिताके कमाये हुए अन्नसे शरीरका पालन-पोषण होता है। पिताके धनसे शिक्षा एवं योग्यता प्राप्त होती है। माता-पिताके उद्योगसे विवाह होता है। इस तरह पुत्रपर माता-पिताका,

माता-पितापर दादा-दादीका और दादा-दादीपर परदादा-परदादीका ऋण रहता है। परम्परासे रहनेवाले इस पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये, पितरोंकी सद्गतिके लिये उनके नामसे पिण्ड-पानी देना चाहिये। श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये।

पुत्र जन्मभर माता-पिता आदिके नामसे पिण्ड-पानी देता है, पर आगे पिण्ड-पानी देनेके लिये सन्तान उत्पन्न नहीं करता तो वह पितृऋणसे मुक्त नहीं होता अर्थात् उसपर पितरोंका ऋण रहता है। परन्तु सन्तान उत्पन्न होनेपर उसपर पितृऋण नहीं रहता, प्रत्युत वह पितृऋण सन्तानपर आ जाता है। पितर पिण्ड-पानी चाहते हैं; अतः पिण्ड-पानी मिलनेसे वे सुखी रहते हैं और न मिलनेसे वे दुःखी हो जाते हैं। पुत्रकी सन्तान न होनेसे भी वे दुःखी हो जाते हैं कि आगे हमें पिण्ड-पानी कौन देगा!

प्रश्न—क्या पितरोंके नामसे दिया हुआ उनको मिल जाता है?

उत्तर—पितरोंके नामसे जो कुछ दिया जाय, वह सब उनको मिल जाता है। वे चाहे किसी भी योनिमें क्यों न हों, उनके नामसे दिया हुआ पिण्ड-पानी उनको उसी योनिके अनुसार खाद्य या पेय पदार्थके रूपमें मिल जाता है। जैसे, पितर पशुयोनिमें हों तो उनके नामसे दिया हुआ अन्न उनको घास बनकर मिल जायगा और देवयोनिमें हों तो अमृत बनकर मिल जायगा। तात्पर्य है कि जैसी वस्तुसे उनका निर्वाह होता हो, वैसी वस्तु उनको मिल जाती है। जैसे हम यहाँसे अमेरिकामें किसीको मनीआर्डरके द्वारा रुपये भेजें तो वे वहाँ डालर बनकर उसको मिल जाते हैं, ऐसे ही हम पितरोंके नामसे पिण्ड-पानी देते हैं, दान-पुण्य करते हैं, तो वह जिस योनिमें पितर हैं, उसी योनिके अनुसार खाद्य या पेय पदार्थके रूपमें पितरोंको मिल जाता है।

आज हमें बड़े आदरसे जो रोटी-कपड़ा आदि मिलता है, वह हमारे पूर्वकृत पुण्योंका फल भी हो सकता है और हमारे पूर्वजन्मके पुत्र-पौत्रादिकोंके द्वारा किये हुए श्राद्ध-तर्पणका फल भी हो सकता है, पर है यह हमारा प्रारब्ध ही।

जैसे किसीने बैंकमें एक लाख रुपये जमा किये। उनमेंसे उसने कुछ अपने नामसे, कुछ पत्नीके नामसे और कुछ पुत्रके नामसे जमा किये, तो वह अपने नामसे जमा किये हुए पैसे ही निकाल सकता है, अपनी पत्नी और पुत्रके नामसे जमा किये हुए पैसे नहीं। वे पैसे तो उसकी पत्नी और पुत्रको ही मिलेंगे। ऐसे ही पितरोंके नामसे जो पिण्ड-पानी दिया जाता है, वह पितरोंको ही मिलता है, हमें नहीं। हाँ, हम जीते-जी गयामें जाकर अपने नामसे पिण्ड-पानी देंगे तो मरनेके बाद वह हमें ही मिल जायगा। गयामें तो पशु-पक्षीके नामसे दिया हुआ पिण्ड-पानी भी उनको मिल जाता है। एक सज्जनका अपनी गायपर बड़ा स्नेह था। वह गाय मर गयी तो वह उसको स्वप्नमें बहुत दुःखी दिखायी दी। उसने गयामें जाकर उस गायके नामसे पिण्ड-पानी दिया। फिर वह गाय स्वप्नमें दिखायी दी तो वह बहुत प्रसन्न थी।

जैसे हमारे पास एक तो अपना कमाया हुआ धन है और एक पिता, दादा, परदादाका कमाया हुआ धन है तो अपने कमाये हुए धनपर ही हमारा अधिकार है; पिता, दादा आदिके कमाये हुए धनपर हमारा उतना अधिकार नहीं है। वंश-परम्पराके अनुसार पिता, दादा आदिके धनपर हमारे पुत्र-पौत्रोंका अधिकार है। ऐसे ही पितरोंको वंश-परम्पराके अनुसार पुत्र-पौत्रोंका दिया हुआ पिण्ड-पानी मिलता है। अतः पुत्र-पौत्रोंपर पिता, दादा आदिके पिण्ड-पानी देनेका दायित्व है।

एक पितृलोक भी है, पर मरनेके बाद सब पितृलोकमें ही

जाते हों—यह कोई नियम नहीं है। कारण कि अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही सबकी गति होती है।

प्रश्न—यदि किसीके माता-पिता (पितर) मुक्त हो गये हैं, भगवद्धाममें चले गये हैं तो उनके नामसे दिये हुए पिण्ड-पानीका क्या होगा?

उत्तर—पुत्रको तो यह पता नहीं रहता कि मेरे माता-पिता मुक्त हो गये, भगवद्धाममें चले गये; पर वह उनके नामसे आदरपूर्वक जो पिण्ड-पानी देता है, दान-पुण्य करता है, वह सब उसके नामपर जमा हो जाता है और मरनेके बाद उसीको मिल जाता है। जैसे, हम किसीके नामसे बम्बई पैसे भेजते हैं, पर वह व्यक्ति वहाँ नहीं है तो वे पैसे वापिस हमें ही मिल जाते हैं।

प्रश्न—क्या सन्तान उत्पन्न किये बिना भी मनुष्य पितृऋणसे छूट सकता है?

उत्तर—हाँ, छूट सकता है। जो भगवान्‌के सर्वथा शरण हो जाता है, उसपर कोई भी ऋण नहीं रहता—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

(श्रीमद्भा० ११।५।४१)

'राजन्! जो सारे कार्योंको छोड़कर सम्पूर्णरूपसे शरणागतवत्सल भगवान्‌की शरणमें आ जाता है, वह देव, ऋषि, प्राणी, कुटुम्बीजन और पितृगण इनमेंसे किसीका भी ऋणी और सेवक (गुलाम) नहीं रहता।'

प्रश्न—देवऋण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है?

उत्तर—वर्षा होती है, घाम तपता है, हवा चलती है, पृथ्वी सबको धारण करती है, रात्रिमें चन्द्रमा और दिनमें सूर्य प्रकाश करता है, जिससे सबका जीवन-निर्वाह चलता है—यह सब

हमपर देवऋण है। हवन, यज्ञ करनेसे देवताओंकी पुष्टि होती है और हम देवऋणसे मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न—ऋषिऋण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है?

उत्तर—ऋषि मुनियोंने, सन्त-महात्माओंने जो ग्रन्थ बनाये हैं, स्मृतियाँ बनायी हैं, उनसे हमें प्रकाश मिलता है, शिक्षा मिलती है, कर्तव्य अकर्तव्यका ज्ञान होता है; अत: उनका हमपर ऋण है। उनके ग्रन्थोंको पढ़नेसे, स्वाध्याय करनेसे, पठन-पाठन करनेसे, सन्ध्या-गायत्री करनेसे हम ऋषिऋणसे मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न—भूतऋण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है?

उत्तर—गाय भैंस, भेड़-बकरी, ऊँट-घोड़ा आदि जितने प्राणी हैं, उनसे हम अपना काम चलाते हैं, अपना जीवन निर्वाह करते हैं। वृक्ष लता आदिसे फल, फूल, पत्ती, लकड़ी आदि लेते हैं। यह हमपर दूसरोंका, प्राणियोंका ऋण है। पशु पक्षियोंको घास, अन्न आदि देनेसे, जल पिलानेसे, वृक्ष-लता आदिको खाद और जल देनेसे हम इस भूतऋणसे मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न—मनुष्यऋण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है?

उत्तर—बिना किसीकी सहायता लिये हमारा जीवन-निर्वाह नहीं होता। हम दूसरोंके बनाये हुए रास्तेपर चलते हैं, दूसरोंके बनाये हुए कुएँका पानी काममें लेते हैं, दूसरोंके लगाये हुए पेड़-पौधोंको काममें लेते हैं, दूसरोंके द्वारा उत्पन्न किये हुए अन्न आदि खाद्य पदार्थोंको काममें लेते हैं—यह उनका हमपर ऋण है। दूसरोंकी सुख-सुविधाके लिये कुआँ खुदवानेसे, प्याऊ लगानेसे, बगीचा लगानेसे, रास्ता बनवानेसे, धर्मशाला बनवानेसे,

अन्न-क्षेत्र चलानेसे हम मनुष्यऋणसे मुक्त हो सकते हैं।

पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण, भूतऋण और मनुष्यऋण—ये पाँचों ऋण गृहस्थपर ही लागू होते हैं। जो भगवान्‌के सर्वथा शरण हो जाता है, वह पितर, देवता आदि किसीका भी ऋणी नहीं रहता, सभी ऋणोंसे छूट जाता है।

प्रश्न—यदि कोई सन्तान न हो तो अपने सम्बन्धियोंके अथवा अनाथ बालक-बालिकाओंको गोद लेना चाहिये या नहीं?

उत्तर—आजकलके जमानेमें गोद न लेना ही अच्छा है; क्योंकि अपना पैदा किया हुआ बेटा भी सेवा नहीं करता, आज्ञा नहीं मानता तो गोद लिया हुआ बेटा क्या निहाल करेगा! यद्यपि पिण्ड-पानी देनेके लिये गोद लेनेका विधान तो है, पर वह पिण्ड-पानी ही नहीं देगा तो उसको गोद लेना किस कामका? यदि हमारे लिये लड़केकी आवश्यकता होती तो भगवान् दे देते। हमारे लिये लड़केकी आवश्यकता नहीं है, इसलिये भगवान्‌ने नहीं दिया है। अतः हम गोद लेकर अपने लिये आफत क्यों पैदा करें! प्रायः ऐसा देखा गया है कि गोद लिये हुए लड़के माँ-बापको दुःख ही दुःख देते हैं, उनकी सेवा नहीं करते। अतः अनाथ बालकोंको पढ़ाना चाहिये, उनकी सेवा करनी चाहिये, उनके शरीर निर्वाहका प्रबन्ध करना चाहिये।

प्रश्न—अगर कोई बेटा नहीं होगा तो वृद्धावस्थामें हमारी सेवा कौन करेगा?

उत्तर—जिनके बेटे हैं, क्या वे सभी अपने माँ-बापकी सेवा करते हैं? आजकलके बेटे तो माँ-बापकी धन-सम्पत्ति अपने नाम करवाना चाहते हैं और श्राद्ध-तर्पणको फालतू समझते हैं तो ऐसे बेटे क्या सेवा करेंगे? वे तो केवल दुःखदायी होते हैं।

वास्तवमें प्रारब्धसे जैसी सेवा बननेवाली है, जितना सुख आराम मिलनेवाला है, वह तो मिलेगा ही, चाहे पुत्र हो या न हो। हमने यह प्रत्यक्ष देखा है कि विरक्त सन्तोंकी जितनी सेवा होती है, उतनी सेवा गृहस्थोंके बेटे नहीं करते। तात्पर्य है कि बेटा होनेसे ही सेवा होती है, यह बात नहीं है।

प्रश्न—अगर कोई बेटा नहीं होगा तो मरनेके बाद हमें पिण्ड-पानी कौन देगा और पिण्ड-पानी न मिलनेसे हमारी गति कैसे होगी?

उत्तर—पिण्ड-पानी देनेसे पिण्ड-पानी लेनेवालोंका आगे जन्म-मरण चालू होता है। जैसे रास्तेमें चलनेवाला व्यक्ति भूख-प्यासके कारण कहीं रुक जाता है, रास्तेमें अटक जाता है और अन्न-जल मिलनेके बाद फिर अपने रास्तेपर चल पड़ता है, ऐसे ही मृतात्माओंको पिण्ड-पानी न मिलनेसे वे एक जगह अटक जाते हैं, रुक जाते हैं और पिण्ड-पानी मिलनेसे वे वहाँसे चल पड़ते हैं अर्थात् उनकी आगे गति शुरू हो जाती है, उनका जन्म-मरण चालू हो जाता है; परन्तु उनकी मुक्ति, कल्याण नहीं होता।

वास्तवमें मुक्ति होना, कल्याण होना सन्तानके अधीन किंचिन्मात्र भी नहीं है। अगर मुक्ति सन्तानके अधीन हो तो मुक्ति पराधीन ही हुई! फिर मनुष्य-जन्मकी स्वतन्त्रता कहाँ रही? कल्याणमें, मुक्तिमें जब शरीरकी आसक्ति भी बाधक है, तो फिर मरनेके बाद भी पुत्रसे पिण्ड-पानीकी आशा कल्याण कैसे होने देगी? वह तो बन्धनमें ही डालेगी। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उसको पुत्रैषणा (पुत्रकी इच्छा), लोकैषणा (संसारमें आदर सत्कार, मान बड़ाईकी इच्छा) और वित्तैषणा (धनकी इच्छा)—इन तीनोंका त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि ये तीनों ही

परमात्मप्राप्तिमें बाधक हैं।

जिसको सन्तानकी, पिण्ड-पानीकी इच्छा है, वह जन्म मरणके चक्रमें पड़े रहना चाहता है; क्योंकि कहीं जन्म होगा, तभी तो वह पिण्ड-पानी चाहेगा। अगर जन्म होगा ही नहीं तो पिण्ड-पानी किसको चाहिये!

पुत्र न होनेसे कल्याण नहीं होता—यह बात बिलकुल गलत है। अगर सन्तान होनेसे कल्याण होता तो सूकरीके ग्यारह और सर्पिणीके एक सौ आठ बच्चे होते हैं, फिर उनका तो कल्याण हो ही जाना चाहिये! ऐसे ही ज्यादा बच्चेवालोंका कल्याण जल्दी होना चाहिये, पर वह होता नहीं।

सन्तान हो अथवा न हो, मनुष्यको केवल भगवान्‌में ही लगना चाहिये; भगवान्‌के परायण होकर भगवान्‌का भजन करना चाहिये। अगर पुत्रकी इच्छा न मिटती हो तो निःसन्तान मनुष्यको चाहिये कि वह श्रीरामललाको, श्रीकृष्णललाको अपना पुत्र मान ले और पुत्र-भावसे उनका लाड़-प्यार करे। वह पुत्र (भगवान्) जैसी सेवा करेगा, वैसी सेवा पैदा किया हुआ पुत्र कर ही नहीं सकता! वह पुत्र तो लोक-परलोकका सब काम कर देगा।

प्रश्न—गृहस्थमें बाल बच्चोंके भरण पोषण, विवाह आदिको लेकर अनेक चिन्ताएँ रहती हैं, उन चिन्ताओंसे छुटकारा कैसे पाया जा सकता है?

उत्तर—प्रत्येक प्राणी अपने प्रारब्धके अनुसार ही जन्मता है। प्रारब्धमें तीन चीजें होती हैं—जन्म, आयु और भोग। * इन तीनोंमें प्राणीका 'जन्म' तो हो चुका है; उसकी जितनी 'आयु' है, उतना तो वह जीयेगा ही; और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका

* सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। (योगदर्शन २।१३)

आना 'भोग' है। वास्तवमें परिस्थिति किसीको भी सुखी-दुःखी नहीं करती, प्रत्युत मनुष्य ही अज्ञानवश परिस्थितिसे सुखी-दुःखी हो जाता है।

कन्या बड़ी हो जाय तो ऐसी परिस्थितिमें उसके विवाहको लेकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि कन्या अपने प्रारब्ध (भाग्य) को लेकर ही आयी है। अतः उसको अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति उसके प्रारब्धके अनुसार ही मिलेगी। माता-पिताको तो उसके विवाहके विषयमें यह विचार करना है कि जहाँ हमारी कन्या सुखी रहे, वहीं उसको देना है। ऐसा विचार करना माता-पिताका कर्तव्य है। परन्तु हम उसको सुखी कर ही देंगे, उसको अच्छा परिवार मिल ही जायगा, यह उनके हाथकी बात नहीं है। अतः कर्तव्यका पालन तो होना चाहिये, पर चिन्ता नहीं होनी चाहिये।

एक चिन्ता होती है और एक विचार होता है। चिन्ता अज्ञान (मूर्खता) से पैदा होती है और उससे अन्तःकरण मैला होता है, नया विकास नहीं होता। परन्तु विचारसे बुद्धिका विकास होता है। अतः हरेक काम कैसे करना है, किस रीतिसे करना है आदि विचार तो करना चाहिये, पर चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये। यदि चिन्तासे रहित होकर विचार किया जाय तो कोई-न-कोई उपाय जरूर मिल जाता है।

प्रश्न—यदि बेटे वृद्धावस्थामें सेवा न करें तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—बेटोंसे अपनी ममता उठा लेनी चाहिये। यही मानना चाहिये कि ये हमारे बेटे नहीं हैं। कोई भी सेवा न करे तो ऐसी अवस्थामें कुटुम्बियोंसे जो सुख सुविधा पानेकी आशा होती है, उसीसे दुःख होता है—'**आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्**'। अतः उस आशाका ही त्याग कर देना चाहिये और

असुविधामें तपकी भावना करनी चाहिये कि 'भगवान्‌की बड़ी कृपासे हमें स्वतः तप करनेका अवसर मिला है अगर परिवारवाले हमारी सेवा करने लग जाते तो हम उनकी मोह-ममतामें फँस जाते, पर भगवान्‌ने कृपा करके हमें फँसने नहीं दिया!'

मनुष्य मोह-ममतामें फँस जाता है—यही उसकी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा है। उस बाधाको जो हटाते हैं, उनका तो उपकार ही मानना चाहिये कि ये हमें बाधारहित कर रहे हैं, हमारा कल्याण कर रहे हैं, उनकी हमपर बड़ी भारी कृपा है!

जीवनभर सेवा लेते रहनेसे वृद्धावस्थामें असमर्थताके कारण परिवारवालोंसे सेवा लेनेकी इच्छा ज्यादा हो जाती है। अतः मनुष्यको पहलेसे ही सावधान रहना चाहिये कि मैं सेवा लेनेके लिये यहाँ नहीं आया हूँ, मैं तो सबकी सेवा करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ; क्योंकि मनुष्य, देवता, ऋषि-मुनि, पितर, पशु-पक्षी, भगवान् आदि सबकी सेवा करनेके लिये ही यह मनुष्य शरीर है। अतः किसीसे भी सुख-सुविधा नहीं चाहनी चाहिये। अगर हम पहलेसे ही किसीसे सुख सुविधा, सेवा नहीं चाहेंगे तो वृद्धावस्थामें सेवा न होनेपर भी दुःख नहीं होगा। हाँ, हमारे मनमें सेवा लेनेकी इच्छा न रहनेसे दूसरोंके मनमें हमारी सेवा करनेकी इच्छा जाग्रत् हो जायगी!

हरेक क्षेत्रमें त्यागकी आवश्यकता है। त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है। प्रतिकूल परिस्थिति आनेपर भी प्रसन्न रहना बड़ा भारी तप है। अन्तःकरणकी शुद्धि तपसे होती है, सुख-सुविधासे नहीं। सुख-सुविधा चाहनेसे अन्तःकरण अशुद्ध होता है। अतः मनुष्य सुख कभी चाहे ही नहीं, प्रत्युत अपने मन-वाणी-शरीरसे दूसरोंको सुख पहुँचाये।

प्रश्न—यदि परिवारमें कोई मर जाय तो मृतात्माकी शान्तिके लिये तथा अपना शोक दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(१) मृतात्माके लिये विधिवत् नारायणबलि, श्राद्ध-तर्पण आदि करना चाहिये। (२) जब-जब उसकी याद आये, तब-तब उसको भगवान्‌के चरणोंमें देखना चाहिये। (३) उसके निमित्त गीता पाठ, भागवत-सप्ताह, श्रीरामचरितमानसका नवाह्नपारायण, नाम-जप, कीर्तन आदि करने चाहिये। (४) उसके निमित्त गरीब बालकोंको मिठाई बाँटनी चाहिये। मिठाई मिलनेसे बालक प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी प्रसन्नतासे मृतात्माको भी शान्ति मिलती है और खुदको भी।

सत्संग, कथा-कीर्तन, मन्दिर, तीर्थ आदिमें जानेके विषयमें शोक नहीं रखना चाहिये, प्रत्युत वहाँ जरूर जाना चाहिये। इनमें भी सत्संगकी विशेष महिमा है, क्योंकि सत्संगसे सब प्रकारका शोक दूर होता है।

(२) व्यवहार

प्रश्न—परिवारके बड़े-बूढ़ोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

उत्तर—बड़ोंको सुख-आराम देना, उनकी सेवा करना, उनको बड़प्पन देना, उनका आदर करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनके शासनमें रहना—यह छोटोंका कर्तव्य है। परन्तु यह खुद बड़ोंका कर्तव्य नहीं है अर्थात् हम बड़े हैं, पूजनीय हैं, आदरणीय हैं—ऐसा मानना बड़ोंका काम नहीं है। कारण कि ऐसा भाव रहनेसे दूसरोंके हृदयमें उनके प्रति आदरभाव कम होता है और आगे चलकर उनका निरादर होने लगता है। अतः बड़ोंका भाव तो सबका पालन-पोषण करनेका, कष्ट सहनेका, छोटोंको सुख-सुविधा देनेका ही होना चाहिये। छोटों और बड़ोंका इस प्रकार भाव होनेसे सम्पूर्ण परिवार एवं समाज सुखी होता है।

प्रश्न—विधवा स्त्रीके साथ सास-ससुर, माता पिता आदिका कैसा व्यवहार होना चाहिये?

उत्तर—बहू अथवा बेटी विधवा हो जाय तो सास-ससुर, माता-पिता आदिको उसका हृदयसे आदर करना चाहिये और बाहरसे रक्षा एवं शासन करना चाहिये, जिससे वह बिगड़ न जाय। तात्पर्य है कि उसका हित चाहते हुए उसके साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिये, जिससे वह दुःखी भी न हो और उसके आचरण भी न बिगड़ें।

बहू अथवा बेटीके विधवा होनेपर सास और माँको चाहिये कि वे अपना जीवन सादगीसे बितायें; गहने-कपड़े, भोजन आदिको भोगबुद्धिसे सेवन न करें, प्रत्युत निर्वाहमात्र करें। ऐसा करनेसे बहू और बेटीका सुधार होगा। कारण कि सास और माँ भोग भोगेंगी तो उसका असर बहू और बेटीपर अच्छा नहीं पड़ेगा। यदि सास और माँ संयम रखेंगी तो उसका असर बहू और बेटीपर भी अच्छा पड़ेगा, जिससे उनका जीवन सुधरेगा। सास और माँको यही विचार करना चाहिये कि अभी इस अवस्थामें हम संयम नहीं करेंगी तो फिर कब संयम करेंगी? संसारमें संयमी और त्यागीकी ही महिमा है, भोगी और संग्रहीकी नहीं।

प्रश्न—विधवा स्त्रीके साथ भाई और भौजाइयोंका कैसा व्यवहार होना चाहिये?

उत्तर—भाई और भौजाइयोंको विधवाका हृदयसे आदर करना चाहिये, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। उसके चरित्र और भावोंकी रक्षा करते हुए उसके साथ आदरका बर्ताव करना चाहिये। उसके हितकी दृष्टिसे उसपर शासन और प्यार—दोनों ही करना चाहिये।

प्रश्न—माता-पिताको कन्याके घरका अन्न खाना चाहिये या नहीं?

उत्तर—माता-पिताने कन्याका दान कर दिया तो वह उस घरकी मालकिन बन गयी, अब माता-पिताको उसके घरका अन्न

लेनेका अधिकार नहीं है। दान की हुई वस्तुपर दाताका अधिकार नहीं रहता। हमने एक कथा सुनी है। बरसानेका एक चमार सुबह किसी कामके लिये नन्दगाँव गया। वहीं दोपहर हो गयी। कुछ खाया-पीया नहीं था। प्यास लगी थी, पर बेटीके गाँवका जल कैसे पीया जाय? * क्योंकि हमारे वृषभानुजीने यहाँ कन्या दी है—ऐसा सोचकर उसने वहाँका जल नहीं पीया और बरसानेके लिये चल दिया। चलते चलते वह प्यासके कारण रास्तेमें गिर पड़ा। उस समय राधाजी उस चमारकी कन्याका रूप धारण करके उसके पास आयीं और बोलीं कि पिताजी! मैं आपके लिये जल लायी हूँ, पी लो। चमारने कहा कि बेटी! मैं अभी नन्दगाँवकी सीमामें हूँ; अतः मैं यहाँका पानी नहीं पी सकता। राधाजीने कहा कि पिताजी! मैं तो बरसानेका जल लायी हूँ। उसने वह जल पी लिया और कहा कि बेटी! अब तुम जाओ, मैं आता हूँ। राधाजी चली गयीं। चमार अपने घर पहुँचा तो उसने अपनी बेटीको गोदमें लेकर कहा कि बेटी! तुमने जल पिलाकर मेरे प्राण बचा लिये! अगर तुम जल लेकर नहीं आती तो मेरे प्राण चले जाते। कन्याने कहा कि पिताजी! मैं तो जल लेकर आयी ही नहीं थी! तब चमार समझ गया कि राधाजी ही मेरी कन्याका रूप धारण करके जल पिलाने आयी थीं। तात्पर्य है कि पहले लोग अपनी बेटीके गाँवका भी अन्न-जल नहीं लेते थे।

जबतक कन्याकी सन्तान न हो जाय, तबतक उसके घरका अन्न-जल नहीं लेना चाहिये। परंतु कन्याकी सन्तान होनेपर माता-पिता कन्याके यहाँका अन्न जल ले सकते हैं। कारण कि दामादने केवल पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये ही दूसरेकी कन्या स्वीकार की है। उससे सन्तान होनेपर दामाद पितृऋणसे मुक्त हो

* बरसानेके लोग राधाजीको अपनी कन्या मानते हैं।

जाता है; अतः कन्यापर माँ बापका अधिकार हो जाता है, तभी तो दौहित्र अपने नाना-नानीका श्राद्ध-तर्पण करता है, उनको पिण्ड-पानी देता है और परलोकमें नाना-नानी अपने दौहित्रके द्वारा किया हुआ श्राद्ध-तर्पण, पिण्ड-पानी स्वीकार भी करते हैं। यदि कन्याकी सन्तान पुत्री हो, पुत्र न हो, तो भी उसके घरका अन्न-जल ले सकते हैं; क्योंकि सन्तान होनेसे कन्यादान सफल हो जाता है।

प्रश्न—माता-पिता और पुत्र-पुत्रीका आपसमें कैसा व्यवहार होना चाहिये ?

उत्तर—माता-पिताका यही भाव होना चाहिये कि पुत्र-पुत्रीने हमारे घर जन्म लिया है; अतः हमें इनके लोक-परलोकका सुधार करना है। हमें केवल अपना सुख-आराम नहीं देखना है, प्रत्युत 'इनका सुधार कैसे हो' इस भावसे पुत्र-पुत्रीपर शासन करना है, उनको अच्छी शिक्षा देनी है और समयपर ताड़ना भी करनी पड़े तो वह भी उनके हितके लिये ही करनी है।

पुत्र पुत्रीका यही भाव होना चाहिये कि जिस शरीरसे हम परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं, महान् आनन्दकी प्राप्ति कर सकते हैं, वह शरीर हमें माँ-बापसे मिला है; अतः हमारे द्वारा इनको कभी दुःख न हो। हमारे कारण इनका अपयश न हो। हमारे ऐसे आचरण हों, जिनसे लोगोंमें इनका आदर-सम्मान बढ़े। हम तीर्थ, व्रत आदि जो कुछ शुभ कर्म करें, उनका फल (पुण्य) माता-पिताको ही मिले। ऐसे भावसे आपसमें प्रेम बढ़ेगा, वर्तमानमें परिवार सुखी होगा और भविष्यमें सबका कल्याण होगा।

प्रश्न—पति और पत्नीका आपसमें कैसा व्यवहार होना चाहिये ?

उत्तर—पतिका यही भाव रहना चाहिये कि यह अपने माता-पिता, भाई आदि सबको छोड़कर मेरे पास आयी है तो

इसने कितना बड़ा त्याग किया है! अतः इसको किसी तरहका कष्ट न हो, शरीर-निर्वाहके लिये इसको रोटी, कपड़े, स्थान आदिकी कमी न हो, मेरी अपेक्षा इसको ज्यादा सुख मिले। ऐसा भाव रखनेके साथ-साथ उसके पातिव्रत धर्मका भी खयाल रखना चाहिये, जिससे वह उच्छृंखल न बने और उसका कल्याण हो जाय।

पत्नीका यही भाव रहना चाहिये कि मैं अपने गोत्र और सब कुटुम्बियों आदिका त्याग करके इनके पास आयी हूँ तो समुद्र लाँघकर अब किनारे आकर मैं डूब न जाऊँ अर्थात् मैं इतना त्याग करके आयी हूँ तो अब मेरे कारण इनको दुःख न हो, इनका अपमान, निन्दा, तिरस्कार न हो। अगर मेरे कारण इनकी निन्दा आदि होगी तो बड़ी अनुचित बात हो जायगी। मैं चाहे कितना ही कष्ट पा लूँ, पर इनको किंचिन्मात्र भी कष्ट न हो। इस तरह वह अपने सुख-आरामका त्याग करके पतिके सुख आरामका खयाल रखे; उनका लोक-परलोक कैसे सुधरे—इसका खयाल रखे।

प्रश्न—सास और बहूका आपसमें कैसा व्यवहार होना चाहिये?

उत्तर—सासका तो यही भाव होना चाहिये कि यह अपनी माँको छोड़कर हमारे घरपर आयी है और मेरे ही बेटेका अंग है, अतः मेरा कोई व्यवहार ऐसा नहीं होना चाहिये, जिसके कारण इसको अपनी माँ याद आये।

बहूका यही भाव होना चाहिये कि मेरा जो सुहाग है, उसकी यह खास जननी है। जो मेरा सर्वस्व है, वह इसी वृक्षका फल है। अतः इनका आदर होना चाहिये, प्रतिष्ठा होनी चाहिये। कष्ट मैं भोगूँ और सुख इनको मिले। ये मेरे साथ चाहे जैसा कड़वा बर्ताव करें, वह मेरे हितके लिये ही है। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता

है कि मेरे बीमार होनेपर मेरी सास जितनी सेवा करती है, उतनी सेवा दूसरा कोई नहीं कर सकता। वास्तवमें मेरे साथ हितैषितापूर्वक जैसा सासका व्यवहार है, वैसा व्यवहार और किसीका दीखता नहीं और सम्भव भी नहीं! इन्होंने मेरेको बहूरानी कहा है और अपना उत्तराधिकार मेरेको ही दिया है। ऐसा अधिकार दूसरा कौन दे सकता है! इनका बदला मैं कई जन्मोंमें भी नहीं उतार सकती। अतः मेरे द्वारा इनको किंचिन्मात्र भी किसी प्रकारका कष्ट न हो। इसी तरह अपने भाई-बहनोंसे भी जेठ-जेठानी, देवर-देवरानीका आदर ज्यादा करना है। जेठ-जेठानी माता पिताकी तरह और देवर-देवरानी पुत्र-पुत्रीकी तरह हैं। अतः यही भाव रखना चाहिये कि इनको सुख कैसे हो! मैं केवल सेवा करनेके लिये ही इनके घरमें आयी हूँ; अतः मेरी छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी क्रिया केवल इनके हितके लिये, सुख-आरामके लिये ही होनी चाहिये। मेरे साथ इनका कैसा व्यवहार है—इस तरफ मुझे खयाल करना ही नहीं है; क्योंकि इनके कड़वे व्यवहारमें भी मेरा हित ही है।

प्रश्न—भौजाई और देवरका आपसमें कैसा व्यवहार होना चाहिये ?

उत्तर—भौजाई सीताजीकी तरह और देवर भरतकी तरह व्यवहार करे। सीताजी भरतको पुत्रकी तरह समझती थीं। कैकयीने बिना कारण रामजीको वनमें भेज दिया, पर सीताजीने कभी भी भरतपर दोषारोपण नहीं किया, भरतका निरादर नहीं किया, प्रत्युत चित्रकूटमें जब भरतजीने सीताजीकी चरण रजको अपने सिरपर चढ़ाया, तब सीताजीने उन्हें आशीर्वाद दिया! ऐसे ही भौजाईको चाहिये कि देवर कितना ही निरादर, अपमान करे, पर वह अपना मातृभाव, हितैषीभाव कभी न छोड़े और देवरको चाहिये कि भौजाईका माँकी तरह आदर करे। यद्यपि सीताजी

अवस्थामें उतनी बड़ी नहीं थीं, फिर भी भरत, लक्ष्मण आदिका सीताजीमें मातृभाव था।

प्रश्न—बहनोई और सालेका आपसमें कैसा व्यवहार होना चाहिये?

उत्तर—बहनोईका यह भाव होना चाहिये कि जैसे मेरेको मेरी स्त्री प्यारी लगती है, ऐसे ही मेरी स्त्रीका प्यारा भाई होनेसे साला प्यारका पात्र है। इनके घरसे समय-समयपर कुछ-न-कुछ मिलता ही रहता है; अतः लौकिक दृष्टिसे देखा जाय तो भी फायदा-ही-फायदा है। पारमार्थिक भावमें तो त्यागकी मुख्यता है ही।

सालेका यह भाव होना चाहिये कि ये मेरी बहनके ही आदरणीय अंग हैं; अतः ये मेरे भी आदरके पात्र हैं। जैसे बहन और बेटीको देनेका माहात्म्य है, ऐसे ही बहनका अंग होनेसे बहनोईको भी देनेका माहात्म्य है। ये प्यारके, दानके पात्र हैं; अतः हृदयसे आदर करते हुए इनको देते रहना चाहिये।

प्रश्न—भाई और बहनका आपसमें कैसा व्यवहार होना चाहिये?

उत्तर—प्रायः भाईकी तरफसे ही गलती होती है। बहनकी तरफसे कम गलती होती है। अतः भाईका यह भाव रहना चाहिये कि यह सुआसिनी है, दयाकी मूर्ति है, इसका ज्यादा आदर, प्यार करना है। ब्राह्मणको भोजन करानेका जैसा पुण्य होता है, वैसा ही पुण्य बहन-बेटीको देनेका होता है।

सरकारने पिताकी सम्पत्तिमें बहनके हिस्सेका जो कानून बनाया है, उससे भाई-बहनमें लड़ाई हो सकती है, मनमुटाव होना तो बहुत मामूली बात है। वह जब अपना हिस्सा माँगेगी, तब बहन-भाईमें प्रेम नहीं रहेगा। हिस्सा पानेके लिये जब भाई-भाईमें भी खटपट हो जाती है, तो फिर भाई-बहनमें खटपट हो जाय,

इसमें कहना ही क्या है! अतः इसमें बहनोंको हमारी पुरानी रिवाज (पिताकी सम्पत्तिका हिस्सा न लेना) ही पकड़नी चाहिये, जो कि धार्मिक और शुद्ध है। धन आदि पदार्थ कोई महत्त्वकी वस्तुएँ नहीं हैं। ये तो केवल व्यवहारके लिये ही हैं। व्यवहार भी प्रेमको महत्त्व देनेसे ही अच्छा होगा, धनको महत्त्व देनेसे नहीं। धन आदि पदार्थोंका महत्त्व वर्तमानमें कलह करानेवाला और परिणाममें नरकोंमें ले जानेवाला है। इसमें मनुष्यता नहीं है। जैसे, कुत्ते आपसमें बड़े प्रेमसे खेलते हैं, पर उनका खेल तभीतक है, जबतक उनके सामने रोटी नहीं आती। रोटी सामने आते ही उनके बीच लड़ाई शुरू हो जाती है! अगर मनुष्य भी ऐसा ही करे तो फिर उसमें मनुष्यता क्या रही?

धर्मको, अपने कर्तव्यको, भगवान् और ऋषियोंकी आज्ञाको और त्यागको महत्त्व देनेसे लोक-परलोक स्वतःसिद्ध हो जाते हैं। परन्तु मान, बड़ाई, स्वार्थ आदिको महत्त्व देनेसे लोक-परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं।

प्रश्न—गृहस्थको अतिथिके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये?

उत्तर—अतिथिका अर्थ है—जिसके आनेकी कोई तिथि, निश्चित समय न हो। अतिथि-सेवाकी मुख्यता गृहस्थ-आश्रममें ही है। दो नम्बरमें इसकी मुख्यता वानप्रस्थ-आश्रममें है। ब्रह्मचारी और संन्यासीके लिये इसकी मुख्यता नहीं है।

जब ब्रह्मचारी स्नातक बनता है अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रमके नियमोंका पालन करके दूसरे आश्रममें जानेकी तैयारी करता है, तब उसको यह दीक्षान्त उपदेश दिया जाता है—'**मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।**' (तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षा० ११। २) अर्थात् माता, पिता, आचार्य और अतिथिको ईश्वर समझकर उनकी सेवा करो। गृहस्थ-

आश्रममें जानेवालोंके लिये ये खास नियम हैं। अतः गृहस्थको अतिथिका यथायोग्य आदर-सत्कार करना चाहिये।

अतिथि-सेवामें आसन देना, भोजन कराना, जल पिलाना आदि बहुत-सी बातें हैं, पर मुख्य बात अन्न देना ही है। जब रसोई बन जाय, तब पहले विधिसहित बलिवैश्वदेव करे। बलिवैश्वदेव करनेका अर्थ है—विश्वमात्रको भोजन अर्पित करना। फिर भगवान्‌को भोग लगाये। फिर कोई अतिथि, भिक्षुक आ जाय तो उसको भोजन कराये। भिक्षुक छः प्रकारके कहे गये हैं—

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः॥

'ब्रह्मचारी, साधु-संन्यासी, विद्याध्ययन करनेवाला, गुरुकी सेवा करनेवाला, मार्गमें चलनेवाला और क्षीणवृत्तिवाला (जिसके घरमें आग लगी हो; चोर-डाकू सब कुछ ले गये हों, कोई जीविका न रही हो आदि)—ये छः भिक्षुक कहे जाते हैं'; अतः इन छहोंको अन्न देना चाहिये।

यदि बलिवैश्वदेव करनेसे पहले ही अतिथि, भिक्षुक आ जायँ तो? समय हो तो बलिवैश्वदेव कर ले, नहीं तो पहले ही भिक्षुकको अन्न दे देना चाहिये। ब्रह्मचारी और संन्यासी तो बनी हुई रसोईके मालिक हैं। इनको अन्न न देकर पहले भोजन कर ले तो पाप लगता है, जिसकी शुद्धि चान्द्रायणव्रत* करनेसे होती

* चान्द्रायणव्रतकी विधि इस प्रकार है—अमावस्याके बाद प्रतिपदाको एक ग्रास, द्वितीयाको दो ग्रास—इस क्रमसे एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास अन्न ग्रहण करे। फिर पूर्णिमाके बाद प्रतिपदासे एक-एक ग्रास कम करे अर्थात् प्रतिपदाको चौदह, द्वितीयाको तेरह आदि। तात्पर्य है कि चन्द्रमाकी कला बढ़ते समय ग्रास बढ़ाना और कला घटते समय ग्रास घटाना 'चान्द्रायणव्रत' है। ग्रासके सिवाय और कुछ भी नहीं लेना चाहिये।

है। अतिथि घरपर आकर खाली हाथ लौट जाय तो वह घरके मालिकका पुण्य ले जाता है और अपने पाप दे जाता है। अतः अतिथिको अन्न जरूर देना चाहिये।

गृहस्थको भीतरसे तो अतिथिको परमात्माका स्वरूप मानना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये, उसको अन्न-जल देना चाहिये, पर बाहरसे सावधान रहना चाहिये अर्थात् उसको घरका भेद नहीं देना चाहिये, घरको दिखाना नहीं चाहिये आदि। तात्पर्य है कि भीतरसे आदर करते हुए भी उसपर विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि आजकल अतिथिके वेशमें न जाने कौन आ जाय!

प्रश्न—गृहस्थका धर्म तो पहले संन्यासी आदिको भोजन देनेका है और संन्यासीका धर्म गृहस्थके भोजन करनेके बाद भिक्षाके लिये जानेका है, तो दोनों बातें कैसे?

उत्तर—गृहस्थको चाहिये कि रसोई बन जानेपर पहले बलिवैश्वदेव कर ले, फिर अतिथि आ जाय तो उसको यथाशक्ति भोजन दे और अतिथि न आये तो एक गाय दुहनेमें जितना समय लगता है, उतने समयतक दरवाजेके बाहर खड़े होकर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। अतिथि न आये तो उसका हिस्सा अलग रखकर भोजन कर ले।

संन्यासी कुछ भी संग्रह नहीं करता। अतः जब उसको भूख लगे, तब वह भिक्षाके लिये गृहस्थके घरपर जाय। जब गृहस्थ भोजन कर ले और बर्तन माँजकर अलग रख ले, उस समय वह भिक्षाके लिये जाय। तात्पर्य है कि गृहस्थपर भार न पड़े, उसकी रसोई कम न पड़े। घरमें एक-दो आदमियोंकी रसोई बनी हो और भिक्षुक आ जाय तो रसोई कम पड़ेगी! हाँ, घरमें पाँच-सात आदमियोंकी रसोई बनी हो तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा; परन्तु उस घरपर भिक्षुक ज्यादा आ जायँ तो उनपर भी भार पड़ेगा। अतः गृहस्थके भोजन करनेके बाद ही संन्यासीको भिक्षाके लिये जाना

चाहिये और जो बचा हो, वह लेना चाहिये। संन्यासीको चाहिये कि वह भिक्षाके लिये गृहस्थके घरपर ज्यादा न ठहरे। अगर गृहस्थ मना न करे तो एक गाय दुहनेमें जितना समय लगता है, उतने समयतक गृहस्थके घरपर ठहरे। अगर गृहस्थके मनमें देनेकी भावना न हो तो वहाँसे चल देना चाहिये, पर क्रोध नहीं करना चाहिये। ऐसे ही गृहस्थको भी क्रोध नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—गृहस्थको अपने पड़ोसीके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

उत्तर—पड़ोसीको अपने परिवारका ही सदस्य मानना चाहिये। यह अपना है और यह पराया है—ऐसा भाव तुच्छ हृदयवालोंका होता है। उदार हृदयवालोंके लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना कुटुम्ब है*। भगवान्‌के नाते सब हमारे भाई हैं। अतः खास घरके आदमियोंकी तरह ही पड़ोसीसे बर्ताव करना चाहिये। घरमें कभी मिठाई या फल आ जायँ और सामने अपने तथा पड़ोसीके बालक हों तो मिठाई आदिका वितरण करते हुए पहले पड़ोसीके बालकोंको थोड़ा, ज्यादा और बढ़िया मिठाई आदि दे। उसके बाद बहन-बेटीके बालकोंको अधिक मात्रामें और बढ़िया मिठाई आदि दे। फिर कुटुम्बके तथा ताऊ आदिके बालक हों तो उनको दे। अन्तमें बची हुई मिठाई आदि अपने बालकोंको दे। इसमें कोई शंका करे कि हमारे बालकोंको कम और साधारण चीज मिले तो हम घाटेमें ही रहे? इसमें घाटा नहीं है। हम पड़ोसी या बहन-बेटीके बालकोंके साथ ऐसा बर्ताव करेंगे तो वे भी हमारे बालकोंके साथ ऐसा ही बर्ताव करेंगे, जिससे माप-तौल बराबर ही आयेगा। खास बात यह है कि ऐसा बर्ताव करनेसे

---

* अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥ (पचतन्त्र, अपरीक्षित० ३७)

आपसमें प्रेम बहुत बढ़ जायगा। प्रेमकी जो कीमत है, वह वस्तु-पदार्थोंकी नहीं है।

पड़ोसीकी कोई गाय-भैंस घरपर आ जाय तो पड़ोसीसे झगड़ा न करे और उन पशुओंको पीटे भी नहीं, प्रत्युत प्रेमपूर्वक पड़ोसीसे कह दे कि 'भैया! तुम्हारी गाय-भैंस हमारे घरपर आ गयी है। वह फिर न आ जाय, इसका खयाल रखना।' हम ऐसा सौम्य बर्ताव करेंगे तो हमारी गाय-भैंस पड़ोसीके यहाँ जानेपर वह भी ऐसा ही बर्ताव करेगा। यदि पड़ोसी क्रूर बर्ताव करे तो भी हमारेको उसपर क्रोध नहीं करना चाहिये, प्रत्युत इस बातकी विशेष सावधानी रखनी चाहिये कि हमारी गाय-भैंस आदिसे पड़ोसीका कोई नुकसान न हो।

हमारे घर कोई उत्सव हो, विवाह आदि हो और उसमें बढ़िया-बढ़िया मिष्ठान्न आदि बने तो उसको पड़ोसीके बालकोंको भी देना चाहिये; क्योंकि पड़ोसी होनेसे वे हमारे कुटुम्बी ही हैं। इससे भी अधिक प्रेमका बर्ताव करना हो तो जैसे अपनी बहन बेटीके विवाहमें देते हैं, ऐसे ही पड़ोसीकी बहन-बेटीके विवाहमें भी देना चाहिये; जैसे अपने दामादके साथ बर्ताव करते हैं, ऐसे ही पड़ोसीके दामादके साथ भी बर्ताव करना चाहिये।

प्रश्न—नौकरके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

उत्तर—नौकरके साथ अपने बालककी तरह बर्ताव करना चाहिये। नौकर दो तरहसे रखा जाता है—(१) नौकरको तनखाह भी देते हैं और भोजन भी। (२) नौकरको केवल तनखाह देते हैं, भोजन वह अपने घरपर करता है। जो नौकर तनखाह भी लेता है और भोजन भी करता है, उसके साथ भोजनमें विषमता नहीं करनी चाहिये। प्रायः घरोंमें नौकरके लिये तीन नम्बरका, घरके सदस्योंके लिये दो नम्बरका और अपने पति-पुत्रके लिये एक नम्बरका भोजन बनाया जाता है तो यह तीन

तरहका भोजन न बनाकर एक तरहका ही भोजन बनाना चाहिये। भोजन मध्यम दर्जेका बनाना चाहिये और सबको देना चाहिये। समयपर कोई भिक्षुक आ जाय तो उसको भी देना चाहिये।

जो नौकर केवल तनखाह लेता है, भोजन नहीं करता, वह जैसा उचित समझे, बनाये और खाये। परन्तु हमारे घरपर कभी विशेषतासे मिठाई आदि बने तो नौकरके बाल-बच्चोंको देनी चाहिये। विवाह आदिमें उसको कपड़े आदि देने चाहिये। उसको तनखाह तो यथोचित ही देनी चाहिये, पर समय-समयपर उसको इनाम, कपड़ा, मिठाई आदि भी देते रहना चाहिये। अधिक तनखाहका उतना असर नहीं पड़ता, जितना इनाम आदिका असर पड़ता है। नौकरको इनाम आदि देनेसे देनेवालेके हृदयमें उदारता आती है और आपसमें प्रेम बढ़ता है, जिससे वह समयपर चोर-डाकू आदिसे हमारी रक्षा भी करेगा; विवाह आदिके अवसरपर वह उत्साहसे काम करेगा।

प्रश्न—घरमें चूहे, छिपकली, मच्छर, खटमल आदि जीवोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

उत्तर—घरमें रहनेवाले चूहे आदिको भी अपने घरका सदस्य मानना चाहिये; क्योंकि वे भी अपना घर बनाकर हमारे घरमें रहते हैं। अतः उनका भी हमारे घरमें रहनेका अधिकार है। तात्पर्य है कि अपनी रक्षा करते हुए जहाँतक बने, उनका भी पालन करना चाहिये। परन्तु आजकल लोग उनको मार देते हैं, यह ठीक नहीं है। मनुष्यको अपनी रक्षा करनेका ही अधिकार है, किसीको मारनेका अधिकार नहीं है। जैसे मनुष्य पृथ्वीपर अपना घर बनाकर रहता है, ऐसे ही चूहे आदि भी अपना घर बनाकर रहते हैं; अतः उनको मारना नहीं चाहिये। घरमें साँप, बिच्छू आदि जहरीले जीव हों तो उनको युक्तिसे पकड़कर घरसे दूर सुरक्षित स्थानपर छोड़ देना चाहिये।

अपनी सफाई न रखनेसे, अशुद्धि रखनेसे ही मच्छर, खटमल आदि पैदा होते हैं। अतः घरमें पहलेसे ही स्वच्छता, निर्मलता रखनी चाहिये, जिससे वे पैदा हों ही नहीं। स्वच्छता रखते हुए भी वे पैदा हो जायँ, तो भी उनको मारनेका हमें अधिकार नहीं है।

प्रश्न—घरमें कुत्ता पालना चाहिये या नहीं?

उत्तर—घरमें कुत्ता नहीं रखना चाहिये। कुत्तेका पालन करनेवाला नरकोंमें जाता है। महाभारतमें आया है कि जब पाँचों पाण्डव और द्रौपदी वीरसंन्यास लेकर उत्तरकी ओर चले तो चलते-चलते भीमसेन आदि सभी गिर गये। अन्तमें जब युधिष्ठिर भी लड़खड़ा गये, तब इन्द्रकी आज्ञासे मातलि रथ लेकर वहाँ आया और युधिष्ठिरसे कहा कि आप इसी शरीरसे स्वर्ग पधारो। युधिष्ठिरने देखा कि एक कुत्ता उनके पास खड़ा है। उन्होंने कहा कि यह कुत्ता मेरी शरणमें आया है; अतः यह भी मेरे साथ स्वर्गमें चलेगा। इन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा—

स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्यमिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति॥

(महाभारत, महाप्र० ३।१०)

'धर्मराज! कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है। उनके यज्ञ करने और कुआँ, बावड़ी आदि बनवानेका जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नामक राक्षस हर लेते हैं। इसलिये सोच-विचारकर काम करो और इस कुत्तेको छोड़ दो। ऐसा करनेमें कोई निर्दयता नहीं है।'

युधिष्ठिरने कहा कि मैंने इसका पालन नहीं किया है, यह तो मेरी शरणमें आया है। मैं इसको अपना आधा पुण्य देता हूँ, इसीसे यह मेरे साथ चलेगा। युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उस कुत्तेमेंसे धर्मराज प्रकट हो गये और बोले कि मैंने तेरी परीक्षा ली

थी। तुमने मेरेपर विजय कर ली, अब चलो स्वर्ग!

तात्पर्य है कि गृहस्थको घरमें कुत्ता नहीं रखना चाहिये। महाभारतमें आया है—

भिन्नभाण्डं च खट्वां च कुक्कुटं शुनकं तथा।
अप्रशस्तानि सर्वाणि यश्च वृक्षो गृहेरुहः॥
भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वायां तु धनक्षयः।
कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाश्नन्ति देवताः।
वृक्षमूले ध्रुवं सत्त्वं तस्माद् वृक्षं न रोपयेत्॥

(महाभारत, अनु० १२७। १५ १६)

'घरमें फूटे बर्तन, टूटी खाट, मुर्गा, कुत्ता और अश्वत्थादि वृक्षका होना अच्छा नहीं माना गया है। फूटे बर्तनमें कलियुगका वास कहा गया है। टूटी खाट रहनेसे धनकी हानि होती है। मुर्गे और कुत्तेके रहनेपर देवता उस घरमें हविष्य ग्रहण नहीं करते तथा मकानके अन्दर कोई बड़ा वृक्ष होनेपर उसकी जड़के भीतर साँप, बिच्छू आदि जन्तुओंका रहना अनिवार्य हो जाता है, इसलिये घरके भीतर पेड़ न लगाये।'

कुत्ता महान् अशुद्ध, अपवित्र होता है। उसके खान-पानसे, स्पर्शसे, उसके जगह जगह बैठनेसे गृहस्थके खान-पानमें, रहन सहनमें अशुद्धि, अपवित्रता आती है और अपवित्रताका फल भी अपवित्र (नरक आदि) ही होता है।

प्रश्न—खेत आदिकी रक्षाके लिये कुत्ता रखा जाय तो क्या हानि है?

उत्तर—कुत्तेको केवल खेत आदिकी रक्षाके लिये ही रखे। समय समयपर उसको रोटी दे, पर अपनेसे उसको दूर ही रखे। उसको अपने साथ रखना, अपने साथ घुमाना, मर्यादारहित छुआछूत करना ही निषिद्ध है। तात्पर्य है कि कुत्तेका पालन करना, उसकी रक्षा करना दोष नहीं है, प्रत्युत प्राणिमात्रका पालन

करना तो गृहस्थका खास कर्तव्य है। परन्तु कुत्तेके साथ घुल मिलकर रहना, उसको साथमें रखना, उसमें आसक्ति रखना पतनका कारण है, क्योंकि अन्तसमयमें यदि कुत्तेका स्मरण हो जायगा तो अगले जन्ममें कुत्ता ही बनना पड़ेगा*।

प्रश्न—घरकी छतपर या दीवारपर पीपल लग जाय तो उसको हटाना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—उसको उखाड़कर चौराहेमें या मन्दिरके सामने अथवा गलीमें अच्छी जगह लगा देना चाहिये और उसको जल देते रहना चाहिये। छत या दीवार तोड़नी पड़े तो कोई बात नहीं, उसकी फिर मरम्मत करा लेनी चाहिये, पर जहाँतक बन सके, पीपलको काटना नहीं चाहिये। पीपल, वट, पाकर, गूलर, आँवला, तुलसी आदि पवित्र वृक्षोंका विशेष आदर करना चाहिये, जो मनुष्योंको पवित्र करनेवाले हैं।

प्रश्न—गृहस्थको जीवन-निर्वाहके लिये धन कैसे कमाना चाहिये ?

उत्तर—गृहस्थको शरीरसे परिश्रम करके और 'दूसरेका हक न आ जाय' ऐसी सावधानी रखकर धन कमाना चाहिये। जितना धन पैदा हो जाय, उसमेंसे दसवाँ, पन्द्रहवाँ अथवा बीसवाँ हिस्सा दान पुण्यके लिये निकालना चाहिये। धन कमानेमें कुछ-न-कुछ दोष आ जाते हैं; अतः उन दोषोंके प्रायश्चित्तके लिये धन निकालना चाहिये।

प्रश्न—आजकल सरकारी कानून ऐसे हैं कि हम सच्चाईसे धन कमा नहीं सकते; अतः क्या करना चाहिये ?

---

* यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ (गीता ८।६)

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह उसी भावसे सदा भावित होता हुआ उस उसको ही प्राप्त होता है अर्थात् उस-उस योनिमें ही चला जाता है।'

उत्तर—सरकारी कानूनसे बचनेका उपाय है—अपना खर्चा कम करना; स्वाद-शौकीनी, सजावट आदिमें खर्चा न करना; साधारण रीतिसे निर्वाह करना; बड़ी सादगीसे सात्त्विक जीवन बिताना। कारण कि धन कमाना हाथकी बात नहीं है। धन तो जितना मिलनेवाला है, उतना ही मिलेगा; पर खर्चा कम करना हाथकी बात है, इसमें हम स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न—यह बात तो प्रत्यक्ष है कि हम पूरा टैक्स देते हैं तो धन चला जाता है और टैक्स पूरा नहीं देते, छिपा लेते हैं तो धन बच जाता है; अतः छिपा लेना अच्छा हुआ?

उत्तर—एक बार ऐसा दीखता है कि टैक्स न देनेसे धन बच गया, पर अन्तमें वह धन रहेगा नहीं*। बचा हुआ धन काममें भी आयेगा नहीं। परंतु धनके लिये जो झूठ, कपट, धोखेबाजी, अन्याय आदि किये हैं, उनका दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा और अन्यायपूर्वक कमाया हुआ धन छोड़कर मरना ही पड़ेगा। तात्पर्य है कि अन्यायपूर्वक कमाया हुआ धन चाहे डॉक्टरों, वकीलों आदिके पास चला जायगा, चाहे चोर डाकू ले जायँगे, चाहे बैंकोंमें पड़ा रहेगा, पर आपके काममें नहीं आयेगा। अतः जो धन आपके काममें नहीं आयेगा, उसके लिये पाप, अन्याय क्यों किया जाय?

सच्चाईसे कमानेपर धन कम आयेगा, यह बात नहीं है। जो धन आनेवाला है, वह तो आयेगा ही। हाँ, किस तरह आयेगा, इसका तो पता नहीं, पर आनेवाला धन आयेगा जरूर। ऐसे कई उदाहरण देखनेमें आते हैं कि जो धनका त्याग कर देते

---

* अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति॥

'अन्यायसे कमाया हुआ धन दस वर्षतक ठहरता है और ग्यारहवाँ वर्ष प्राप्त होनेपर वह मूलसहित नष्ट हो जाता है।'

हैं, धन लेते नहीं, उनके सामने भी धन आता है। तात्पर्य है कि जैसे घाटा, बीमारी, दुःख आदि बिना चाहे, बिना उद्योग किये आते हैं, ऐसे ही जो धन, सुख आनेवाला है, वह भी बिना चाहे, बिना उद्योग किये ही आयेगा—

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च।
देहिनां यद् यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः॥

(श्रीमद्भा० ११। ८। १)

'राजन्! प्राणियोंको जैसे इच्छाके बिना प्रारब्धानुसार दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसे ही इन्द्रियजन्य सुख स्वर्गमें और नरकमें भी प्राप्त होते हैं। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह उन सुखोंकी इच्छा न करे।'

(३) बालक-सम्बन्धी बातें

प्रश्न—आदर्श सन्तान कैसे उत्पन्न हो?

उत्तर—आदर्श सन्तान तभी उत्पन्न हो सकती है, जब माता-पिताके आचरण, भाव आदर्श हों और सन्तानकी उत्पत्ति केवल पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये ही हो, अपने सुखके लिये न हो; क्योंकि अपनी सुखासक्तिसे उत्पन्न की हुई सन्तान प्रायः कम श्रेष्ठ होती है। कुन्तीके आचरण, भाव आदर्श थे तो धर्मराज स्वयं उनकी गोदमें आये थे।

माताओंको चाहिये कि जब वे गर्भवती हो जायँ, तब वे अपनी सन्तानको श्रेष्ठ, अच्छा बनानेकी इच्छासे भगवान्की कथाएँ एवं भगवद्भक्तोंके चरित्र सुनें, उनका ही चिन्तन करें और वैसे ही चित्र देखें। इस तरह माँपर अच्छे संगका असर होनेसे श्रेष्ठ सन्तान पैदा होती है। जैसे, जब प्रह्लादजीकी माँ गर्भवती थी, तब नारदजीने गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके उसको भगवान्की

कथा सुनायी, उपदेश दिया, जिससे राक्षसकुलमें होते हुए भी प्रह्लादजी श्रेष्ठ हुए।

सत्कर्म (सदाचार), सच्चिन्तन, सच्चर्चा और सत्संग—ये चार हैं। अच्छे कर्म करना 'सत्कर्म' है। दूसरेके हितका और भगवान्‌का चिन्तन करना 'सच्चिन्तन' है। आपसमें भगवान् और भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन करना और सुनना 'सच्चर्चा' है। मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् ही मेरे हैं—इस तरह भगवान्‌के साथ अटलरूपसे स्थित रहना 'सत्संग' है। इन चारोंसे सन्तान आदर्श, श्रेष्ठ बन सकती है।

मनुष्यशरीरमें ही यह स्वतन्त्रता है कि मनुष्य नया निर्माण कर सकता है, अपनी उन्नति कर सकता है, अपनेको श्रेष्ठ बना सकता है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह सन्त महात्माओंका संग करे। सन्त-महात्मा न मिलें तो साधनमें तत्परतासे लगे हुए साधकोंका संग करे। ऐसे साधक भी न मिलें तो गीता, रामायण आदि सत् शास्त्रोंका पठन-पाठन एवं मनन करे और अपने कल्याणका विचार रखे। इससे वह श्रेष्ठ पुरुष बन सकता है।

प्रश्न—माता-पिताके आचरण, भाव आदि तो बड़े अच्छे हैं, पर उनकी सन्तान अच्छी नहीं निकलती—इसका क्या कारण है?

उत्तर—इसमें खास कारण संग-दोष अर्थात् बालकको अच्छा संग न मिलना ही है। ऋणानुबन्धसे पूर्वजन्मका बदला लेनेके लिये भी ऐसी सन्तान पैदा होती है। जो पुत्र कुसंगसे बिगड़ता है, वह सत्संगसे सुधर सकता है। परंतु जो पूर्वजन्मका बदला लेनेके लिये आता है, वह तो दुःख ही देनेवाला होता है अतः अपने आचरण, भाव अच्छे होते हुए भी यदि ऐसी सन्तान पैदा हो जाय तो पूर्वका ऋणानुबन्ध समझकर प्रसन्न रहना चाहिये कि हमारा ऋण कट रहा है।

विश्रवा ब्राह्मण-कुलके थे; परन्तु उनकी पत्नी कैकसी राक्षस-कुलकी थी, जिसके कारण रावण पैदा हुआ। उग्रसेन धर्मात्मा पुरुष थे; परन्तु एक दिन एक राक्षसने उग्रसेनका रूप धारण करके उनकी पत्नीसे सहवास किया, जिससे कंस पैदा हुआ।

प्रश्न—माता-पिताके आचरण तो अच्छे नहीं हैं, पर उनकी सन्तान अच्छी निकलती है—इसका क्या कारण है?

उत्तर—प्रायः माँ-बापका स्वभाव ही सन्तानमें आता है, पर ऋणानुबन्धसे अथवा गर्भाधानके समय कोई अच्छा संस्कार पड़नेसे अथवा गर्भावस्थामें किसी सन्त महात्माका संग मिलनेसे श्रेष्ठ सन्तान पैदा हो जाती है। जैसे, हिरण्यकशिपुके यहाँ प्रह्लादजी पैदा हुए। प्रह्लादजीके विषयमें आता है कि तपस्यामें बाधा पड़नेसे हिरण्यकशिपु स्त्रीसे मिलनेके लिये घर आया तो गर्भाधानके समय बातचीतमें उसके मुखसे कई बार 'विष्णु' नामका उच्चारण हुआ। जब उसकी स्त्री कयाधू गर्भवती थी, तब गर्भस्थ बच्चेको लक्ष्य करके नारदजीने उसको भक्तिकी बातें सुनायीं। इन कारणोंसे प्रह्लादजीके भीतर भक्तिके संस्कार पड़ गये। जैसे जलका रस मधुर ही होता है, पर जमीनके संगसे जलका रस बदल जाता है, अलग-अलग हो जाता है (प्रत्येक कुएँका जल अलग अलग होता है), ऐसे ही संगके कारण मनुष्यके भाव बदल जाते हैं।

प्रश्न—पिताकी आत्मा ही पुत्रके रूपमें आती है—इसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर—जैसे कोई किसी ब्राह्मणको अपना कुलगुरु मानता है, कोई यज्ञोपवीत देनेवालेको गुरु मानता है; परन्तु उनका शरीर न रहे तो उनके पुत्रको गुरु माना जाता है और उनका जैसा आदर-सत्कार किया जाता था, वैसा ही उनके पुत्रका आदर-सत्कार

किया जाता है*। जैसे पिता धनका मालिक होता है और पिता मर जाय तो पुत्र धनका मालिक बन जाता है ऐसे ही पुत्र उत्पन्न होता है तो वह पिताका प्रतिनिधि होता है, पिताकी जगह काम करनेवाला होता है।

यहाँ 'आत्मा'का अर्थ गौणात्मा है अर्थात् 'आत्मा' शब्द शरीरका वाचक है। शरीरसे शरीर (पुत्र) पैदा होता है; अतः व्यवहारमें पुत्र पिताका प्रतिनिधि होता है; परन्तु परमार्थ (कल्याण)में पुत्र कोई कारण नहीं है।

प्रश्न—बालकोंको शिक्षा कैसे दी जाय, जिससे वे श्रेष्ठ बन जायँ?

उत्तर—बालक प्रायः देखकर ही सीखते हैं। इसलिये माता-पिताको चाहिये कि वे उनके सामने अपने आचरण अच्छे रखें, अपना जीवन संयमित और पवित्र रखें। ऐसा करनेसे बालक अच्छी बातें सीखेंगे और श्रेष्ठ बनेंगे।

बालकोंकी उन्नतिके लिये एक नम्बरमें तो माता-पिता अपने आचरण अच्छे रखें और दो नम्बरमें उनको अच्छी बातें सुनायें, ऊँचे दर्जेकी शिक्षा दें, भक्तोंके और भगवान्‌के चरित्र सुनायें। अच्छी शिक्षा वह होती है, जिससे बालक व्यवहारमें परमार्थकी कला सीख जायँ। इस विषयमें थोड़ी बातें बतायी जाती हैं।

माता पिता कहीं बाहर जाना चाहते हैं तो वे बच्चोंसे कहते हैं कि 'तुम यहीं रहो'। ऐसा कहनेसे बच्चे मानते नहीं, जिद करते हैं जिससे माता-पिताको भी विक्षेप हो जाता है और बच्चे भी

* जब अर्जुन अश्वत्थामाको बाँधकर द्रौपदीके सामने लाते हैं, तब द्रौपदी अश्वत्थामाको छोड़ देनेका आग्रह करते हुए अर्जुनसे कहती है कि जिनकी कृपासे आपने सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है, वे आपके आचार्य द्रोण ही पुत्र (अश्वत्थामा) के रूपमें आपके सामने खड़े हैं—'स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते'। (श्रीमद्भा० १।७।४५)

दुःखी हो जाते हैं तथा घरमें अशान्ति हो जाती है। अतः बच्चोंको पहलेसे ही यह कह देना चाहिये कि 'हम कहीं जायँ तो जिद मत किया करो; जैसा हम कहें, वैसा किया करो।' रोज दिनमें दो-तीन बार ऐसा कह देनेसे बच्चे इस बातको स्वीकार कर लेंगे। फिर कहीं जाते समय बच्चोंको कह दें कि 'जिद नहीं करना; हम जैसा कहें, वैसा करना।' तो वे आपकी बात मान लेंगे।

घरमें मिठाई आती है, फल आता है, अच्छा खाद्य पदार्थ आता है तो बच्चा उसको लेनेके लिये जिद करता है। अतः जिस समय खाद्य पदार्थ सामने न हो, उस समय दिनमें दो-तीन बार बच्चेसे कह देना चाहिये कि 'कोई खानेकी चीज हो तो पहले दूसरेको देनी चाहिये, बची हुई खुद खानी चाहिये।' फिर बढ़िया चीज सामने आनेपर वह जिद करे तो उस समय उससे कहें कि 'देखो बेटा! जिद नहीं करना और दूसरोंको खिलाकर खाना—बाँटकर खाना, वैकुण्ठमें जाना।' फिर वह जिद नहीं करेगा। इस तरह आप बच्चोंको जो-जो बातें सिखाना चाहते हैं, उन बातोंको दिनमें दो-तीन बार बच्चोंसे कह दिया करें और उनसे प्यारपूर्वक स्वीकार करा लिया करें।

बच्चोंको अच्छी अच्छी बातें सिखानी चाहिये; जैसे—'देखो बेटा! कभी किसी चीजकी चोरी नहीं करना। माँसे माँगकर लेना, न दे तो रोकर लेना, पर चोरी नहीं करना। छोटे भाई-बहनोंसे प्यार करो। उनको खिलाओ, खेलाओ। जैसे भगवान् राम भरत आदिसे प्यार करते थे, प्यारसे समझाते थे, ऐसे ही तुम भी अपने भाई-बहनोंके साथ प्यारसे रहो, उनसे लड़ाई मत करो। आपसमें वाद-विवाद हो जाय तो उनकी बात मानो। अपनी बात मनानेकी जिद मत करो। माँ-बाप जैसा कहें, उसके अनुसार घरका काम-धंधा करो। समय फालतू मत खोओ, अच्छे काममें लगे रहो। दूसरोंका हक मत मारो। दूसरोंकी चीजको अपनी मत मानो।

चीजोंको अच्छे से अच्छे काममें लगाओ, आदि-आदि।' इस तरह बच्चोंको जो-जो शिक्षा देनी हो, उसको रोज दो-तीन बार बच्चोंसे कह देना चाहिये। इससे उनके भीतर इन बातोंका असर हो जायगा।

तात्पर्य है कि बालकोंको एक तो अच्छा आचरण करके दिखाना चाहिये और दूसरा, उनको अच्छी शिक्षा देनी चाहिये। इस विषयमें माता-पिताको भगवान्‌के इन वचनोंका मनन करना चाहिये—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

(गीता ३। २२—२४)

'हे पार्थ! मुझे तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, फिर भी मैं कर्तव्य-कर्ममें ही लगा रहता हूँ। अगर मैं किसी समय सावधान होकर कर्तव्य-कर्म न करूँ तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट भ्रष्ट हो जायँ और मैं संकरताको करनेवाला तथा इस समस्त प्रजाको नष्ट करनेवाला बनूँ।'

प्रश्न—आजकल स्कूलोंका वातावरण अच्छा नहीं है; अतः बच्चोंकी शिक्षाके लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर—बच्चेको प्रतिदिन घरमें शिक्षा देनी चाहिये। उसको ऐसी कहानियाँ सुनानी चाहिये, जिनमें यह बात आये कि जिसने माता-पिताका कहना किया, उसकी उन्नति हुई और जिसने माता पिताका कहना नहीं किया, उसका जीवन खराब हुआ। जब बच्चा पढ़ने लग जाय, तब उसको भक्तोंके चरित्र पढ़नेके लिये देने

चाहिये। बच्चेसे कहना चाहिये कि 'बेटा! हरेक बच्चेके साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध मत रखो, ज्यादा घुल-मिलकर बात मत करो। पढ़कर सीधे घरपर आ जाओ। बड़ोंके पास रहो। कोई चीज खानी हो तो माँसे बनवाकर खाओ, बाजारकी चीज मत खाओ; क्योंकि दूकानदारका उद्देश्य पैसा कमानेका होता है कि पैसा अधिक मिले, चीज चाहे कैसी हो। अतः वह चीजें अच्छी नहीं बनाता। बचपनमें अग्नि तेज होनेसे अभी तो बाजारकी चीजें पच जायँगी, पर उनका विकार (असर) आगे चलकर मालूम होगा।'

गृहस्थको चाहिये कि वह धन कमानेकी अपेक्षा बच्चोंके चरित्रका ज्यादा खयाल रखें; क्योंकि कमाये हुए धनको बच्चे ही काममें लेंगे। अगर बच्चे बिगड़ जायँगे तो धन उनको और ज्यादा बिगाड़ेगा! इस विषयमें अच्छे पुरुषोंका कहना है—***'पूत सपूत तो क्यों धन संचै? पूत कपूत तो क्यों धन संचै?'*** अर्थात् पुत्र सपूत होगा तो उसको धनकी कमी रहेगी नहीं और कपूत होगा तो संचय किया हुआ सब धन नष्ट कर देगा, फिर धनका संचय क्यों करें?

प्रश्न—बच्चोंको ईसाई-स्कूलोंमें शिक्षा दिलानी चाहिये या नहीं?

उत्तर—ईसाई-स्कूलोंमें बच्चोंको पढ़ाओगे तो वे घरमें रहते हुए भी ईसाई बन जायँगे अर्थात् आपके बच्चे ऊपरसे हिन्दू और भीतरसे ईसाई बन जायँगे। यह बड़ी शर्मकी बात है कि हजारों मील दूर रहनेवाले यहाँ आकर आपके बच्चोंको ईसाई बना लेते हैं और आप अपने घरके बच्चोंको भी हिन्दू बनाये नहीं रख सकते! बच्चे आपके देशकी खास सम्पत्ति हैं, उनकी रक्षा करो।

बड़े आदमियोंको चाहिये कि वे निजी स्कूल, कालेज बनायें, जिनमें अच्छा अनुशासन हो और बच्चोंको अच्छी शिक्षा देनेकी व्यवस्था हो। पढ़ानेवाले शिक्षकोंके आचरण भी अच्छे हों। यद्यपि अच्छे आचरणवाले शिक्षक मिलने कठिन हैं, तथापि उद्योग किया

जाय तो मिल सकते हैं ऐसे स्कूल-कालेजोंमें अपने धर्मकी और गीता, रामायण आदि ग्रन्थोंकी शिक्षा भी बच्चोंको दी जानी चाहिये। धार्मिक शिक्षाके लिये एक घण्टा तो अनिवार्य रखना ही चाहिये।

आप स्वयं भी सादगी रखें और बच्चोंको भी सादगी सिखायें। आप स्वाद-शौकीनी, ऐश-आरामका त्याग करें और अच्छे से अच्छे काममें लगे रहें तो इसका बच्चोंपर भी अच्छा असर पड़ेगा। घरमें भगवान्‌का मन्दिर हो, भगवान्‌का पूजन हो। भगवान्‌का चरणामृत छोटे बड़े सभी लें। घरमें भगवत्सम्बन्धी चर्चा हो, भगवन्नाम-कीर्तन हो, अच्छे-अच्छे पदोंका गान हो। आप जितने अच्छे बनोगे, बच्चे भी उतने ही अच्छे बनेंगे। वचनोंकी अपेक्षा आचरणोंका असर ज्यादा पड़ता है।

प्रश्न—पुत्र पुत्रीके विवाहके लिये माता-पिताको क्या करना चाहिये?

उत्तर—मुख्य बात तो यह है कि पुत्र और पुत्रीका जैसा भाग्य होगा, वैसा ही होगा। परन्तु माता-पिताका कर्तव्य है कि यदि पुत्रका विवाह करना हो तो लड़कीका स्वभाव देखना चाहिये; क्योंकि उम्रभर उससे काम पड़ेगा। उसके शरीरमें कोई भयंकर रोग न हो, उसकी माँका स्वभाव ठीक हो आदि जितनी जाँच कर सकें, करनी चाहिये। यदि कन्याका विवाह करना हो तो घर भी अच्छा हो, वर भी अच्छा हो, उसमें योग्यता भी हो आदि बातोंका विचार करके ही अपनी कन्या देनी चाहिये। शास्त्रमें वरके विषयमें सात बातें देखनेके लिये कहा गया है—

कुलं च शीलं च वपुर्यशश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च।
एतान्गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

'वरके कुल, शील, शरीर, यश, विद्या, धन और सनाथता (बड़े लोगोंका सहारा)—इन सात गुणोंकी परीक्षा करके अपनी कन्या देनी चाहिये।'

वास्तवमें वर अच्छा हो और वरकी माँ अच्छी हो तो वहाँ कन्या सुखसे रहती है। कन्याको एकदम नजदीक भी नहीं देना चाहिये और बहुत दूर भी नहीं देना चाहिये; क्योंकि नजदीक देनेसे खटपट ज्यादा हो सकती है* और दूर देनेसे कन्याका माँ-बापसे मिलना कठिन होता है।

तात्पर्य है कि अपनी सन्तान सुख पाये, वह सुख-सुविधासे रहे, उसको किसी तरहका कष्ट न हो और वंशकी वृद्धि हो—ऐसे भावसे सन्तानका विवाह करे।

प्रश्न—क्या दहेज लेना पाप है ?

उत्तर—हाँ, पाप है।

प्रश्न—अगर पाप है तो फिर शास्त्रोंमें इसका विधान क्यों है ?

उत्तर—शास्त्रोंमें केवल दहेज देनेका विधान है, लेनेका विधान नहीं है। दहेज लेना नहीं चाहिये और न लेनेकी ही महिमा है। कारण कि दहेज देना तो हाथकी बात है, पर दहेज लेना हाथकी बात नहीं है।

चाहना दो तरहकी होती है—(१) हमारी चीज हमारेको मिल जाय—यह चाहना न्याययुक्त है, परन्तु परमात्मप्राप्तिमें यह चाहना भी बाधक है। (२) दूसरोंकी चीज हमारेको मिल जाय—यह चाहना नरकोंमें ले जानेवाली है। ऐसे ही दहेज लेनेकी जो इच्छा है, वह नरकोंमें ले जानेवाली है। दहेज कम मिले, ज्यादा मिले और न भी मिले—यह तो प्रारब्धपर निर्भर है,

* नजदीक होनेसे वह लड़की अपने प्रत्येक दुःखकी बात आकर अपनी माँसे कह देगी और माँ उस बातको सहन न करके लड़कीकी सास आदिसे कोई ऐसी बात कह देगी, जिससे लड़कीके ससुरालमें खटपट हो जायगी। लड़कीको भी चाहिये कि वह अपने दुःखकी बात किसीसे भी न कहे, प्रत्युत घरकी बात घरमें ही रखे, नहीं तो उसकी अपनी ही बेइज्जती होगी, उसपर ही आफत आयेगी; जहाँ उसको रात-दिन रहना है, वहीं अशान्ति हो जायगी।

पर अन्यायपूर्वक दूसरोंका धन लेनेकी जो इच्छा है, वह घोर नरकोंमें ले जानेवाली है। मनुष्य शरीर प्राप्त करके घोर नरकोंमें जाना कितना बड़ा नुकसान है, पतन है! अतः मनुष्यको कम से कम घोर नरकोंमें ले जानेवाली इच्छाका, पराये धनकी इच्छाका तो त्याग करना ही चाहिये।

वास्तवमें धन प्रारब्धके अनुसार ही मिलता है, इच्छामात्रसे नहीं। अगर धन इच्छामात्रसे मिलता तो कोई भी निर्धन नहीं रहता। धनकी इच्छा कभी किसीकी पूरी हुई नहीं, होगी नहीं और हो सकती भी नहीं। उसका तो त्याग ही करना पड़ेगा। धन मिलनेवाला हो तो इच्छा न रखनेसे सुगमतापूर्वक मिलता है और इच्छा रखनेसे कठिनतापूर्वक, पाप-अन्यायपूर्वक मिलता है। गीतामें अर्जुनने पूछा कि मनुष्य न चाहता हुआ भी पाप क्यों कर बैठता है? तो भगवान्‌ने उत्तर दिया कि कामना ही सम्पूर्ण पापोंका मूल है (३। ३६-३७)।

पुराने जमानेमें दहेजमें बेटेके ससुरालसे आया हुआ धन बाहर ही वितरित कर दिया करते थे, अपने घरमें नहीं रखते थे और 'दूसरोंकी कन्या दानमें ली है'—इसके लिये प्रायश्चित्तरूपसे यज्ञ, दान, ब्राह्मण भोजन आदि किया करते थे। कारण कि दूसरोंकी कन्या दानमें लेना बड़ा भारी कर्जा (ऋण) है। परन्तु गृहस्थाश्रममें कन्या दानमें लेनी पड़ती है; अतः उनका यह भाव रहता था कि हमारे घर कन्या होगी तो हम भी कन्यादान करेंगे।

जो ब्राह्मण विधि विधानसे गाय आदिको दानमें लेते हैं, वे भी उसके लिये प्रायश्चित्तरूपसे यज्ञ, गायत्री जप करते हैं—ऐसा हमने देखा है। जब दूसरोंका धन लेना भी दोष है, तो फिर दहेजमें धन लेना दोष है ही। अगर कहीं दहेज लेना भी पड़े तो केवल देनेवालेकी इच्छापूर्ति, प्रसन्नताके लिये ही लेना चाहिये। अपनी किंचिन्मात्र भी लेनेकी इच्छा नहीं हो और केवल

देनेवालेकी प्रसन्नताके लिये ही थोड़ा लिया जाय, तो वह लेना भी देनेके समान ही है।

~~०~~

(४) सन्तानका कर्तव्य

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

वास्तवमें भगवान् लक्ष्मी-नारायण ही सबके माता-पिता हैं। इस दृष्टिसे संसारमें हमारे जो माता-पिता हैं, वे साक्षात् लक्ष्मी-नारायणके ही स्वरूप हैं। अतः पुत्रका कर्तव्य है कि वह माता-पिताकी ही सेवामें लगा रहे। असली पुत्र वे होते हैं, जो शरीर आदिको अपना नहीं मानते, प्रत्युत माता-पिताका ही मानते हैं; क्योंकि शरीर माता-पितासे ही पैदा हुआ है। शरीर चाहे स्थूल, सूक्ष्म अथवा कारण ही क्यों न हो, उन सबपर वे माता-पिताका ही अधिकार मानते हैं, अपना नहीं। मनुजीने भी कहा है कि पुत्र तीर्थ, व्रत, भजन, स्मरण आदि जो कुछ शुभ कार्य करे, वह सब माता-पिताके ही अर्पण करे*। माता-पिता जीवित हों तो तत्परतासे उनकी आज्ञाका पालन करे, उनके चित्तकी प्रसन्नता ले और मरनेके बाद उनको पिण्ड-पानी दे, श्राद्ध तर्पण करे, उनके नामसे तीर्थ, व्रत आदि करे। ऐसा करनेसे उनका आशीर्वाद मिलता है, जिससे लोक परलोक दोनों सुधरते हैं।

श्रीभीष्मजीने पिताकी सुख सुविधा, प्रसन्नताके लिये अपनी सुख-सुविधाका त्याग कर दिया और आबाल ब्रह्मचारी रहनेकी

---

* तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत्।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः॥

(मनुस्मृति २। २३६)

प्रतिज्ञा ले ली। उन्होंने कनक-कामिनी दोनोंका त्याग कर दिया। इससे प्रसन्न होकर पिताने उनको इच्छामृत्युका वरदान दिया। वे इच्छामृत्यु हो गये कि जब चाहें, तभी मरें। उनको ऐसी सामर्थ्य पिताकी सेवासे प्राप्त हो गयी। श्रीरामने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये राज्य, वैभव, सुख-आराम आदि सबका परित्याग कर दिया। वाल्मीकिरामायणमें श्रीरामने स्वयं कहा है कि पिताजीके कहनेपर मैं आगमें भी प्रवेश कर सकता हूँ, विषका भी भक्षण कर सकता हूँ और समुद्रमें भी कूद सकता हूँ, पर मैं पिताकी आज्ञा नहीं टाल सकता*। श्रीराम विचारक नहीं थे, आज्ञापालक थे अर्थात् पिताजीने क्या कहा है, कहाँ कहा है, कब कहा है, किस अवस्थामें और किस परिस्थितिमें कहा है आदिका विचार न करके उन्होंने पिताकी आज्ञाका पालन किया और वनवासमें चले गये। अतः माता-पिताके आज्ञा-पालनमें श्रीराम सबके आदर्श हुए। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

तात्पर्य है कि पुत्रको श्रीरामकी तरह अपना आचरण बनाना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि इस परिस्थितिमें, इस अवस्थामें, इस समय मेरी जगह श्रीराम होते तो क्या करते। इस तरह उनका ध्यान करके काम करना चाहिये।

पुत्र माता-पिताकी कितनी ही सेवा करे तो भी वह माता-पिताके ऋणको चुका नहीं सकता। कारण कि जिस मनुष्य शरीरसे अपना कल्याण हो सकता है, जीवन्मुक्ति मिल सकती है,

---

* अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥
(वाल्मीकि० अयोध्या० १८।२८-२९)

भगवत्प्रेम प्राप्त हो सकता है, भगवान्‌का मुकुटमणि बन जाय—इतना ऊँचा पद प्राप्त हो सकता है, वह मनुष्य-शरीर हमें माता-पिताने दिया है। उसका बदला पुत्र कैसे चुका सकता है? नहीं चुका सकता।

प्रश्न—माता-पिताकी सेवाका तात्पर्य क्या है?

उत्तर—माता-पिताकी सेवाका तात्पर्य कृतज्ञतामें है। माता-पिताने बच्चेके लिये जो कष्ट सहे हैं उसका पुत्रपर ऋण है। उस ऋणको पुत्र कभी उतार नहीं सकता। माँने पुत्रकी जितनी सेवा की है, उतनी सेवा पुत्र कर ही नहीं सकता। अगर कोई पुत्र यह कहता है कि मैं अपनी चमड़ीसे माँके लिये जूती बना दूँ तो उससे हम पूछते हैं कि यह चमड़ी तुम कहाँसे लाये? यह भी तो माँने ही दी है! उसी चमड़ीकी जूती बनाकर माँको दे दी तो कौन-सा बड़ा काम किया? केवल देनेका अभिमान ही किया है! ऐसे ही शरीर खास पिताका अंश है। पिताके उद्योगसे ही पुत्र पढ़-लिखकर योग्य बनता है, उसको रोटी कपड़ा मिलता है। इसका बदला कैसे चुकाया जा सकता है! अतः केवल माता-पिताकी सेवा करनेसे, उनकी प्रसन्नता लेनेसे वह ऋण अदा तो नहीं होता, पर माफ हो जाता है।

प्रश्न—मेरा ऐसा पुत्र हो जाय, उसका कल्याण हो जाय—इस उद्देश्यसे माँ-बापने थोड़े ही संग किया! उन्होंने तो अपने सुखके लिये संग किया। हम पैदा हो गये तो हमारेपर उनका ऋण कैसे?

उत्तर—केवल सुखासक्तिसे संग करनेवाले स्त्री पुरुषके प्रायः श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न नहीं होते। जो स्त्री पुरुष शास्त्रके आज्ञानुसार केवल पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये ही सन्तान उत्पन्न करते हैं, अपने सुखका उद्देश्य नहीं रखते, वे ही असली माता-पिता हैं। परन्तु पुत्रके लिये तो कैसे हों, किसी भी तरहके माता-पिता हों, वे पूज्य ही हैं; क्योंकि उन्होंने मानव-शरीर देकर पुत्रको

परमात्मप्राप्तिका अधिकारी बना दिया! उपनिषदोंमें आता है कि विद्यार्थी जब विद्या पढ़कर, स्नातक होकर गृहस्थमें प्रवेश करनेके लिये गुरुजीसे आज्ञा लेता, तब गुरुजी उसको आज्ञा देते कि **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'** अर्थात् तुम माता-पिताको साक्षात् ईश्वररूप मानकर उनकी आज्ञाका पालन करो; उनकी सेवा करो। यह ऋषियोंकी दीक्षान्त शिक्षा है और इसके पालनमें ही हमारा कल्याण है। अतः पुत्रको जिनसे शरीर मिला है, उनका कृतज्ञ होना ही चाहिये।

प्रश्न—माता-पिताने हमें जन्म देकर संसार-बन्धनमें डाल दिया, आफतमें डाल दिया; फिर हमारेपर उनका ऋण कैसे?

उत्तर—यह बात बिलकुल गलत है। माता-पिताने तो मनुष्य-शरीर देकर संसार-बन्धनसे, जन्म-मरणसे छूटनेके लिये बड़ा भारी अवसर दिया है। माता-पिताने पुत्रको न तो बन्धनमें डाला है और न उनका पुत्रको बन्धनमें, आफतमें डालनेका उद्देश्य ही है। वे प्रत्येक अवस्थामें, जाने-अनजाने सदा पुत्रका भला ही चाहते हैं और भला ही करते हैं। परन्तु हम पदार्थोंमें, भोगोंमें, परिस्थितियोंमें, व्यक्तियोंमें ममता करके उनसे सुख भोगनेकी इच्छासे ही बन्धनमें, आफतमें पड़ते हैं। तात्पर्य है कि अपने सुखकी इच्छा, सुखका भोग, सुखकी आशाका त्याग करके यदि पुत्र माता-पिताकी सेवाको परमात्मप्राप्तिका साधन मानकर तत्परतासे उनकी सेवा करे तो उसको संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

पुत्रको माता-पिताके कर्तव्यकी तरफ दृष्टि डालनी ही नहीं चाहिये। उसे तो केवल अपना ही कर्तव्य देखना चाहिये। जो अपने कर्तव्यको न देखकर माता-पिताके कर्तव्यको देखता है, वह अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाता है अर्थात् कर्तव्यपालनसे पतित हो जाता है। किसी भी शास्त्रमें किसीको भी माता पिताके, गुरुजनोंके कर्तव्यको देखनेका अधिकार नहीं दिया गया है। पहले

मनुष्य किसीके कर्तव्यको नहीं देखते थे, प्रत्युत अपना कर्तव्य देखते थे, अपने कर्तव्यका पालन करते थे, इसीसे वे जीवन्मुक्त, भगवद्भक्त होते थे। अगर वे दूसरोंका कर्तव्य देखते, अपना ही स्वार्थ देखते तो आजकी तरह ही मनुष्यसमुदाय होता। जिन्होंने केवल अपना कर्तव्य देखा है, उसका पालन किया है, उन सन्त-महात्माओं, धर्मात्माओंको भारतकी जनता कितनी आदरदृष्टिसे देखती है! अतः मनुष्यको अपने कर्तव्यका कभी परित्याग नहीं करना चाहिये।

कर्तव्यके विषयमें एक मार्मिक बात है कि केवल कर्तव्य समझकर उसका पालन करनेसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है; जैसे—जो माता पिताकी सेवा केवल अपना कर्तव्य समझकर करते हैं, उनका माता पितासे सम्बन्ध-विच्छेद होता है, उनका माता पिताके चरणोंमें प्रेम नहीं होता। परन्तु जो अपने शरीरको माता-पिताका ही मानकर तत्परतासे आदर और प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करते हैं, उनका माता-पितामें प्रेम हो जाता है। जैसे मनुष्य भोजन करनेको, जल पीनेको अपना कर्तव्य नहीं मानते, प्रत्युत प्राणोंका आधार मानते हैं, ऐसे ही माता पिताकी सेवाको प्राणोंका आधार मानना चाहिये। उनकी सेवाको ही अपना जीवन मानना चाहिये, अपना खास काम मानना चाहिये—

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

(मानस, अयोध्या० १४२। २)

इस प्रकार माता-पिताकी सेवाको अपने प्राणोंका, जीवनका आधार मानकर करनेसे 'मैं' और 'मेरा'-पन मिट जाता है; क्योंकि शरीरको माता-पिताका ही मानकर उनकी सेवामें अर्पण करनेसे, शरीरपर अपना कोई अधिकार न माननेसे अहंता-ममता नहीं रहती।

प्रश्न—मनुष्य माता पिताकी सेवाको भगवत्प्राप्तिका साधन मानता है, साध्य नहीं मानता। अगर वह माता-पिताकी सेवाको

ही साध्य मानेगा, अपने प्राणोंका आधार मानेगा तो उसका माता पिताके चरणोंमें ही प्रेम होगा, फिर उसको भगवत्प्रेम, भगवत्प्राप्ति कैसे होगी?

उत्तर—इसमें तीन बातें हैं—(१) जो माता-पिताकी सेवाको ही साधन और साध्य मानकर उनकी सेवा करता है, उनकी सेवाको अपने प्राणोंका आधार मानता है, उसकी माता-पिताके चरणोंमें प्रेम एवं भक्ति हो जाती है और अन्तमें उसको पितृलोककी प्राप्ति होती है। (२) जो परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य रखते हुए माता-पिताकी सेवाको अपना कर्तव्य समझकर करता है, उसको माता पितासे सम्बन्ध विच्छेद होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। (३) जो माता-पिताको साक्षात् भगवत्स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता है, उसको भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इन तीनोंमेंसे जिसमें जिसका भाव बैठे, वही करना चाहिये।

जैसे पतिव्रता स्त्री भगवान्‌की, शास्त्रोंकी, महापुरुषोंकी आज्ञाके अनुसार तन-मनसे पतिकी सेवा करती है, उसको पतिलोककी प्राप्ति होती है अर्थात् जो लोक पतिका है, वही लोक पतिव्रताका होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अगर दुराचारी होनेके कारण पतिका लोक नरक है तो पतिव्रताका लोक भी नरक होगा! जिस स्त्रीने पतिसेवाको अपना धर्म (कर्तव्य) समझकर पातिव्रत धारण किया है, वह नरकोंमें कैसे जा सकती है? नहीं जा सकती। उसने पातिव्रत धारण किया है; अतः उसका जो लोक होगा, वही लोक पतिका भी होगा। तात्पर्य है कि पातिव्रतके तपोबलसे उसका और पतिका दोनोंका कल्याण हो जायगा। ऐसे ही जो माता पिताकी सेवाको ही साधन और साध्य मानकर उनकी सेवा करता है, उसको और उसके माता-पिताको भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि जो लोक पुत्रका होगा, वही लोक माता पिताका (पितृलोक) होगा।

प्रश्न—कहा गया है कि यह शरीर हमारे कर्मोंसे, भाग्यसे

मिला है—'*बड़े भाग मानुष तनु पावा*'; और भगवान्‌ने विशेष कृपा करके मनुष्य-शरीर दिया है—'*कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥*' तो फिर यह शरीर माता-पितासे मिला है—यह कहना कहाँतक उचित है?

उत्तर—इस शरीरके मिलनेमें प्रारब्ध (कर्म) और भगवत्कृपा तो निमित्त कारण है और माता-पिता उपादान कारण हैं। जैसे, घड़ा मिट्टीसे बनता है तो मिट्टी घड़ेका उपादान कारण है और कुम्हार घड़ा बनानेमें निमित्त बनता है तो कुम्हार निमित्त कारण है। उपादान कारण (खास कारण) वह कहलाता है, जो कार्यरूपमें परिणत होनेमें कारण बनता है। निमित्त कारण कई होते हैं; जैसे—घड़ेके बननेमें कुम्हार, चक्का, डण्डा आदि कई निमित्त कारण हैं, पर कुम्हार मुख्य निमित्त कारण है। ऐसे ही शरीरके पैदा होनेमें माता-पिता ही खास उपादान कारण हैं; क्योंकि उनके रज-वीर्यसे ही शरीर बनता है।

जन्म और आयुके होनेमें तथा अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिके बननेमें कर्म निमित्त कारण हैं और 'किस कर्मका कब, कहाँ क्या फल होगा; कैसी परिस्थिति बनेगी'—इस तरह कर्मफलकी व्यवस्था करनेमें, कर्मफल देनेमें भगवत्कृपा निमित्त कारण है अर्थात् यह सब भगवदिच्छासे, भगवान्‌के विधानसे ही होता है; क्योंकि कर्म जड होनेसे स्वयं कर्मफल नहीं दे सकते। अगर कर्मफलका विधान जीवोंके हाथमें होता तो वे शुभ कर्मका ही फल लेते, अशुभ कर्मका फल लेते ही क्यों? जैसे संसारमें यह देखा जाता है कि मनुष्य शुभ कर्मका फल स्वयं स्वीकार करता है और अशुभ कर्म (चोरी, डकैती आदि) का फल (दण्ड) स्वयं स्वीकार नहीं करता तो उसको राजकीय व्यवस्थासे दण्ड दिया जाता है।

माँ बच्चेके लिये कितना कष्ट उठाती है, उसको गर्भमें धारण करती है, जन्म देते समय असह्य पीड़ा सहती है, अपना दूध पिलाती है, बड़े लाड़-प्यारसे पालन-पोषण करती है, खाना-

पीना, उठना बैठना, चलना-फिरना आदि सिखाती है, ऐसी माँका ऋण पुत्र नहीं चुका सकता। अतः पुत्रको माँके प्रति कृतज्ञ होना ही चाहिये। ऐसे ही पिता बिना कहे ही पुत्रके भरण-पोषणका पूरा प्रबन्ध करता है, विद्या पढ़ाकर योग्य बनाता है, जीविका चलानेकी विद्या सिखाता है, विवाह कराता है, ऐसे पिताका ऋण थोड़े ही चुकाया जा सकता है! अतः माता-पिताका कृतज्ञ होकर जीते जी उनकी आज्ञाका पालन करना, उनकी सेवा करना, उनको प्रसन्न रखना और मरनेके बाद उनको पिण्ड-पानी देना, श्राद्ध-तर्पण करना आदि पुत्रका खास कर्तव्य है।

प्रश्न—माता-पिताने बचपनमें ही बच्चोंको अच्छी शिक्षा नहीं दी; अतः पुत्र माता पिताकी सेवा नहीं करते तो इसमें पुत्रोंका क्या दोष?

उत्तर—माता-पिताके द्वारा अच्छी शिक्षा नहीं दी गयी तो उसके दोषी माता पिता हुए; क्योंकि उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया। परन्तु माता-पिताके दोष देखना पुत्रका कर्तव्य नहीं है। उसको तो अपना कर्तव्य देखना चाहिये। दूसरोंका कर्तव्य देखनेसे मनुष्य अपने कर्तव्यसे पतित हो जाता है। दूसरोंका कर्तव्य देखना ही भयंकर दोष है। गीताने भी अपने-आपसे अपना उद्धार करनेकी, अपना सुधार करनेकी बात कही है*; क्योंकि अच्छी शिक्षा मिलनेपर भी धारण तो खुद ही करेगा। अच्छी शिक्षा मिलनेपर भी बालक उसको धारण न करे, बिगड़ जाय तो यह दोष स्वयं बालकका ही है। अतः अपना उद्धार और पतन मुख्यतासे अपनेपर ही लागू होता है।

प्रश्न—अगर माता-पिता पुत्रके साथ कठोरताका बर्ताव

---

* उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः। (गीता ६।५)

'अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे; क्योंकि आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

करें; पक्षपात करें तो उस पुत्रको क्या करना चाहिये?

उत्तर—उस पुत्रको माँ-बापका कर्तव्य नहीं देखना चाहिये। उसको तो अपना ही कर्तव्य देखना चाहिये और माँ-बापकी उत्साहपूर्वक विशेषतासे सेवा करनी चाहिये। रामचरितमानसमें तो हरेकके लिये कहा गया है—***'मंद करत जो करइ भलाई'*** ॥ (५।४१।७)।

अगर माता-पिता पुत्रका आदर करते हैं तो आदरमें पुत्रकी सेवा खर्च हो जाती है, बिक जाती है। परन्तु वे आदर न करके पुत्रका निरादर करते हैं तो पुत्रकी सेवा पूरी रह जाती है, खर्च नहीं होती। वे कष्ट देते हैं तो उससे पुत्रकी शुद्धि होती है, सहनशीलता बढ़ती है, तप बढ़ता है, महत्त्व बढ़ता है। अतः माता-पिताके दिये हुए कष्टको परम तप समझकर प्रसन्नतासे सहना चाहिये और यह समझना चाहिये कि 'मेरेपर माँ-बापकी बड़ी कृपा है, जिससे मेरी सेवाका किंचिन्मात्र भी व्यय न होकर मेरेको शुद्ध सेवा, शुद्ध तपश्चर्याका लाभ मिल रहा है! ऐसा अवसर तो किसी भाग्यशालीको ही मिलता है और मेरा यह अहोभाग्य है कि माता-पिता मेरी सेवा स्वीकार कर रहे हैं!' अगर वे सेवा स्वीकार न भी करें तो भी पुत्रका काम तो उनकी सेवा करना ही है। सेवामें कोई कमी, त्रुटि मालूम दे तो उसको तत्काल सुधार देना चाहिये और सेवामें ही तत्पर रहना चाहिये।

जो पुत्र धन, जमीन, मकान आदि पानेकी आशासे माँ बापकी सेवा करता है, वह वास्तवमें धन आदिकी ही सेवा करता है, माँ-बापकी नहीं। पुत्रको तो केवल सेवाका ही सम्बन्ध रखना चाहिये। उसको माता पितासे यही कहना चाहिये कि आपके पास जो धन-सम्पत्ति हो वह चाहे मेरे भाईको दे दो, चाहे बहनको दे दो, जिसको आप चाहो, उसको दे दो, पर सेवा मेरेसे लो। माता पिता हमारेसे सेवा ले लें—इसीमें उनकी कृपा माने।

प्रश्न—माता-पिता अनुचित, निषिद्ध कर्म करनेकी आज्ञा दें तो पुत्रको क्या करना चाहिये?

उत्तर—अनुचित आज्ञा दो तरहकी होती है—(१) 'अमुकको मार दो' आदि दूसरोंका अनिष्ट करनेकी आज्ञा देना और (२) 'तुम घर छोड़कर वनमें जाओ' आदि आज्ञा देना। इनमेंसे दूसरी आज्ञाका तो पालन करना चाहिये, पर पहली आज्ञाका पालन नहीं करना चाहिये। उसमें पिताकी सामर्थ्य देखनी चाहिये। अगर पिता समर्थ हो तो उस आज्ञाका पालन करनेमें कोई हर्ज नहीं है। जैसे, जमदग्निने अपने पुत्र परशुरामजीसे कहा कि तुम्हारी माँ व्यभिचारिणी है और तुम्हारे भाई मेरी आज्ञाका पालन नहीं करते; अतः इनको मार डालो, तो परशुरामजीने उनका गला काट डाला। जमदग्निने प्रसन्न होकर कहा कि तुम वरदान माँगो। परशुरामजीने कहा कि माँ और भाइयोंको जीवित कर दो और उनको मेरे द्वारा मारे जानेकी बात याद न रहे। जमदग्निने 'तथास्तु' कहा और सब जीवित हो गये।

अगर पिता समर्थ नहीं है और वह अनुचित आज्ञा देता है तो पुत्रको उस आज्ञाका पालन नहीं करना चाहिये। कारण कि अगर पुत्र उस अनुचित आज्ञाका पालन करेगा तो पिताको नरक होगा। जिस आज्ञाके पालनसे पिताको नरक हो, दुःख पाना पड़े, ऐसी आज्ञाका पालन नहीं करना चाहिये। मैं भले ही नरकमें चला जाऊँ, पर पिता नरकमें न जाय—ऐसा भाव होनेसे न पुत्रको नरक होगा और न पिताको। तात्पर्य है कि पिताको नरकसे बचानेके लिये उनकी आज्ञा भंग कर दे, पर अनुचित काम कभी न करे।

अगर पिता समर्थ नहीं है और वह अनुचित आज्ञा देता है, पर पुत्रने उम्रभर माता-पिताकी किसी भी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया है तो पुत्र उस अनुचित आज्ञाके पालनमें जल्दबाजी न करे, उसपर विचार करे और भगवान्‌को याद करे। जैसे, गौतमने अपने पुत्र चिरकारीसे कहा कि तुम्हारी माँ व्यभिचारिणी है, इसको मार डालो;

और ऐसा कहकर वे वनमें चले गये। चिरकारीने तलवार निकाली और पिताकी आज्ञापर विचार करने लगा। वहाँ गौतमके मनमें विचार आया कि उसको क्यों मारें, उसका त्याग भी तो कर सकते हैं। ऐसा विचार करके वे लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि चिरकारी हाथमें तलवार लिये खड़ा है; अतः उन्होंने चिरकारीको मना कर दिया कि माँको मत मारो।

प्रश्न—गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥

—प्रह्लादने पिताका, विभीषणने भाईका, भरतने माँका, बलिने गुरुका और गोपियोंने पतिका त्याग कर दिया, तो क्या उनको दोष नहीं लगा?

उत्तर—यहाँ यह बात ध्यान देनेकी है कि उन्होंने पिता आदिका त्याग किस विषयमें, किस अंशमें किया? हिरण्यकशिपु प्रह्लादजीको बहुत कष्ट देता था, पर प्रह्लादजी उसको प्रसन्नतापूर्वक सहते थे। वे इस बातको मानते थे कि यह शरीर पिताका है; अतः वे इस शरीरको चाहे जैसा रखें, इसपर उनका पूरा अधिकार है। इसीलिये उन्होंने पिताजीसे कभी यह नहीं कहा कि आप मेरेको कष्ट क्यों दे रहे हैं? परन्तु मैं (स्वयं) साक्षात् परमात्माका अंश हूँ; अतः मैं भगवान्‌की सेवामें, भजनमें लगा हूँ। पिताजी इसमें बाधा देते हैं, मुझे रोकते हैं—यह उचित नहीं है। इसलिये प्रह्लादजीने पिताजीकी उस आज्ञाका त्याग किया, जिससे उनको नरक न हो जाय। अगर वे पिताजीकी आज्ञा मानकर भगवद्भक्तिका त्याग कर देते तो इसका दण्ड पिताजीको भोगना पड़ता। पुत्रके द्वारा ऐसा कोई भी काम नहीं होना चाहिये, जिससे पिताको दण्ड भोगना पड़े। इसी दृष्टिसे उन्होंने

पिताकी आज्ञा न मानकर पिताका हित ही किया, पिताका त्याग नहीं किया।

रावणने विभीषणको लात मारी और कहा कि तुम यहाँसे चले जाओ तो विभीषणजी रामजीके पास चले गये। अतः विभीषणने भाईका त्याग नहीं किया। प्रत्युत उसके अन्यायका त्याग किया; अन्यायका समर्थन, अनुमोदन नहीं किया। विभीषणने रावणको उसके हितकी बात ही कही और उसका हित ही किया।

माँने रामजीको वनमें भेज दिया, दुःख दिया—इस विषयमें ही भरतने माँका त्याग किया है। भरतका कहना था कि जैसे कौसल्या अम्बा मेरेपर रामजीसे भी अधिक स्नेह करती हैं, ऐसे ही तेरेको भी रामजीपर मेरेसे भी अधिक स्नेह करना चाहिये था; परन्तु रामजीको तूने वनमें भेज दिया! जब तू रामजीकी भी माँ नहीं रही, तो फिर मेरी माँ कैसे रहेगी? इस विषयमें तेरेको दण्ड देना मेरे लिये उचित नहीं है। मैं तो यह कर सकता हूँ कि तेरेको 'माँ' नहीं कहूँ, और मैं क्या करूँ!

बलिने गुरुका इस अंशमें त्याग किया कि साक्षात् भगवान् ब्राह्मणवेशमें आकर मेरेसे याचना कर रहे हैं, पर गुरुजी मेरेको दान देनेसे रोक रहे हैं; अतः मैं गुरुकी बात नहीं मानूँगा। गुरुकी बातका त्याग भी बलिने गुरुके हितके लिये ही किया। बलि दान देनेके लिये तैयार ही थे। अगर उस समय वे गुरुकी बात मानते तो उसका दोष गुरुको ही लगता। अतः उन्होंने गुरुका शाप स्वीकार कर लिया और उस दोषसे, अहितसे गुरुको बचा लिया। स्वयं दण्ड भोग लिया, पर गुरुको दण्डसे बचा लिया तो यह गुरु-सेवा ही हुई!

पति भगवान्‌के सम्मुख होनेके लिये रोक रहे थे—इसी विषयमें गोपियोंने पतियोंका त्याग किया। अगर वे पतिकी बात मानतीं तो पति पापके भागी होते; अतः पतिकी बात न मानकर उन्होंने पतियोंको पापसे ही बचाया।

तात्पर्य है कि मनुष्य-शरीरकी सार्थकता परमात्माको प्राप्त करनेमें ही है। अतः उसमें सहायक होनेवाला हमारा हित करता है और उसमें बाधा देनेवाला हमारा अहित करता है। प्रह्लाद आदि सभीने परमात्मप्राप्तिमें बाधा देनेवालेका ही त्याग किया है, पिता आदिका नहीं। इसीलिये उनका मंगल-ही-मंगल हुआ।

प्रश्न—माताका दर्जा ऊँचा है या पिताका? और ऊँचा होनेमें क्या कारण है?

उत्तर—ऊँचा दर्जा माँका ही है। माँका दर्जा पितासे सौ गुणा अधिक बताया गया है—'**सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते**' (मनु० २। १४५)। रामजी जब वनवासके लिये जाने लगे, तब वे माँके पास गये और माँके चरणोंमें पड़कर कहा कि 'माँ! मुझे वनवासकी आज्ञा हुई है।' माँने कहा कि अगर केवल पिताकी ऐसी आज्ञा है तो फिर माँको बड़ी समझकर तुम वनमें मत जाओ

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

(मानस, अयोध्या० ५६। १)

हाँ, अगर तुम्हारी छोटी माँ और पिताने वनमें जानेके लिये कह दिया है तो* वन तुम्हारे लिये सौ अयोध्याके समान है—

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

(मानस, अयोध्या० ५६। २)

पिता तो धन-सम्पत्ति आदिसे पुत्रका पालन-पोषण करता है, पर माँ अपना शरीर देकर पुत्रका पालन-पोषण करती है। धन-सम्पत्ति आदि तो ममताकी वस्तुएँ हैं और शरीर अहंताकी। ममतासे अहंता नजदीक होती है। ममताकी वस्तुएँ आती-जाती रहती हैं और

---

* कौसल्या अम्बाने अपनेसे भी अधिक छोटी माँ (विमाता) का आदर करनेकी जो बात कही है, यह इनका उदारभाव है। कौसल्याने सबको यह शिक्षा दी है कि माँसे भी विमाताका अधिक आदर करना चाहिये, जिससे परिवारमें परस्पर प्रेम बना रहे।

शरीर अपेक्षाकृत रहता है। अतः माँका दर्जा ऊँचा होना ही चाहिये।

माँने अपनी युवावस्थाका नाश किया है। अपना शरीर देकर, अपना दूध पिलाकर पालन-पोषण किया है। माँने दाईका, नाईका, धोबीका, दर्जीका, गुरुका काम भी किया है! और तो क्या, टट्टी-पेशाब उठाकर मेहतरका काम भी किया है! वह काम भी भाररूपसे नहीं, प्रत्युत बड़े स्नेहपूर्वक, ममतापूर्वक, उत्साहपूर्वक किया है और बदलेमें लेनेकी भावना नहीं रखी है। जब बच्चा बीमार हो जाता है, तब माँके शरीरका बल घट जाता है। अतः संसारमें माँके समान बच्चेका पालन-पोषण करनेवाला और कौन है! '**मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्।**' इसीलिये माँका दर्जा ऊँचा है। शास्त्रोंमें आया है कि पुत्र साधु-संन्यासी बन जाय, फिर भी यदि माँ सामने आ जाय तो वह माँको साक्षात् दण्डवत् प्रणाम करे। इतना ऊँचा दर्जा और किसका हो सकता है!

प्रश्न—माता पिताकी सेवासे क्या लाभ है?

उत्तर—माता-पिताकी सेवासे लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं, भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो माता-पिताकी सेवा नहीं करते, उनपर भगवान् विश्वास नहीं करते कि यह अपने माँ-बापकी भी सेवा, भक्ति नहीं करता तो फिर मेरी भक्ति कहाँतक करेगा!

पुण्डरीकने तन मनसे तत्परतापूर्वक माता-पिताकी सेवा की। उसकी सेवासे प्रसन्न होकर भगवान् बिना बुलाये ही पुण्डरीकके घर आ गये और बोले—'पुण्डरीक! तेरी माता-पिताकी भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं स्वयं तेरे पास तेरेको दर्शन देने आया हूँ।' पुण्डरीक उस समय माता-पिताकी सेवामें लगे हुए थे; अतः वे भगवान्से बोले—'माता-पिताकी जिस सेवाके कारण आप यहाँ मुझे दर्शन देने आये हैं, उस सेवाको मैं क्यों छोड़ूँ? अभी मैं माता-पिताकी सेवामें लगा हुआ हूँ; सेवा पूरी होनेपर ही मैं आपके दर्शन कर सकता हूँ; तबतक

आप रुकना चाहें तो इन ईंटोंपर खड़े हो जायँ।' ऐसा कहकर पुण्डरीकने दो ईंटें पीठके पीछे फेंक दीं। भगवान् उनपर खड़े हो गये! ईंटोंपर खड़े होनेके कारण भगवान्‌का नाम 'बिट्ठल' पड़ गया। भगवान्‌के इस रूपका कोई दर्शन करना चाहे तो पण्ढरपुर (महाराष्ट्र) में कर सकता है। इसी प्रकार महाभारतमें मूक चाण्डालकी बात आती है। मूक चाण्डालकी माता-पितामें भक्ति देखकर स्वयं भगवान् उसके घरपर रहते थे! तात्पर्य है कि माता-पिताकी सेवासे लौकिक-पारलौकिक सब तरहके लाभ होते हैं।

प्रश्न—जब माता-पिताकी सेवाका इतना माहात्म्य है तो फिर उनकी सेवाको छोड़कर मनुष्य साधु-संन्यासी क्यों हो जाते हैं?

उत्तर—जैसे कोई मर जाता है तो वह माता-पिताकी सेवाको छोड़कर ही मरता है, पर वह दोषका भागी नहीं होता, ऐसे ही जिसको संसारसे असली वैराग्य हो जाता है, वह दोषका भागी नहीं होता। इसी तरह जो सर्वथा भगवान्‌के शरण हो जाता है, उसको भी कोई दोष नहीं लगता; क्योंकि उसपर किसीका भी ऋण नहीं रहता—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

(श्रीमद्भा० ११।५।४१)

'राजन्! जो सब कामोंको छोड़कर सम्पूर्णरूपसे शरणागतवत्सल भगवान्‌की शरणमें आ जाता है, वह देव, ऋषि, प्राणी, कुटुम्बीजन और पितृगण—इनमेंसे किसीका भी ऋणी और सेवक नहीं रहता।'

तात्पर्य है कि जो मनुष्यजन्मके वास्तविक ध्येय भगवान्‌में लगा है, उसके द्वारा यदि माता-पिताकी सेवाका, परिवारका त्याग हो जाय तो उसको दोष नहीं लगता।

प्रश्न—दो-चार लड़के हों और उनमेंसे कोई साधु-संन्यासी बन जाय तो कोई बात नहीं, पर किसीका एक ही लड़का हो, वह अगर

साधु-संन्यासी बन जाय तो उसके माता-पिता किसके सहारे जियें?

उत्तर—उस लड़केको चाहिये कि जबतक माता-पिता हैं, तबतक उनकी सेवा करता रहे, उनको छोड़े नहीं; क्योंकि भगवत्प्राप्तिमें साधु होना कोई कारण नहीं है, प्रत्युत संसारसे वैराग्य और भगवान्‌में प्रेम होना ही कारण है। अतः वह माता-पिताकी सेवा करते हुए ही भजन-स्मरण करे तो उसके लिये भगवत्प्राप्ति होनेमें कोई बाधा नहीं है, प्रत्युत माता-पिताकी प्रसन्नतासे भगवत्प्राप्तिमें सहायता ही मिलेगी। तात्पर्य है कि माता पिताके ऋणको अदा किये बिना उनका त्याग नहीं करना चाहिये। परन्तु तीव्र वैराग्य हो जाय, भगवान्‌के चरणोंमें अनन्य प्रेम हो जाय, ऐसी अवस्थामें माता-पिताकी सेवा छूट जाय तो उसको दोष नहीं लगेगा।

जो घरमें बैठा है, पर माँ-बापकी सेवा नहीं करता केवल अपने स्त्री-पुत्रोंके पालनमें ही लगा है, उसको दोष (पाप) लगेगा ही ऐसे ही जो माँ-बापको, घर परिवारको छोड़कर साधु बना है और मकान, आश्रम बनाता है, रुपये इकट्ठा करता है, चेला-चेली बनाता है, ऐश-आराम करता है, उसको माँ बापकी सेवा न करनेका पाप लगेगा ही।

प्रश्न—अगर कोई साधु संन्यासी बनकर रुपये इकट्ठा करता है और माता-पिता, स्त्री-पुत्रोंको रुपये भेजता है, उनका पालन पोषण करता है तो क्या उसको दोष लगेगा?

उत्तर—जो साधु संन्यासी बनकर माँ-बाप आदिको रुपये भेजते हैं, वे तो पापके भागी हैं ही, पर जो उनके दिये हुए रुपयोंसे अपना निर्वाह करते हैं, वे भी पापके भागी हैं; क्योंकि वे दोनों ही शास्त्र-आज्ञाके विरुद्ध काम करते हैं। माता-पिताकी सेवा तो वे गृहस्थाश्रममें ही रहकर करते, पर वे अवैध काम करके संन्यास-आश्रमको दूषित करते हैं तो उनको पाप लगेगा ही। वे पापसे बच नहीं सकते।

प्रश्न—अगर घरमें माँका पालन करनेवाला, सँभालनेवाला कोई न रहा हो तो उस अवस्थामें साधु-संन्यासी बना हुआ लड़का माँका पालन कर सकता है या नहीं ?

उत्तर—माँका कोई आधार न रहे तो साधु बननेपर भी वह माँका पालन कर सकता है और पालन करना ही चाहिये। असमर्थ अवस्थामें तो दूसरे प्राणियोंकी भी सेवा करनी चाहिये, फिर माँ तो शरीरकी जननी है! वह अगर असमर्थ अवस्थामें है तो उसकी सेवा करनेमें कोई दोष नहीं है।

प्रश्न—पुत्री (कन्या) तो पतिके घर चली जाती है, तो फिर वह माँ-बापकी सेवा कैसे कर सकती है और सेवा किये बिना माँ-बापका ऋण माफ कैसे हो सकता है ?

उत्तर—जैसे, किसीपर इतना अधिक ऋण हो जाय कि उसको चुकानेकी मनमें होनेपर भी वह चुका न सके तो वह ऋणदाताके पास जाकर कह दे कि मैं और मेरे स्त्री-पुत्र, घर, जमीन आदि सब आपके समर्पित हैं; अब आप इनका जैसा उपयोग करना चाहें, वैसा कर सकते हैं। ऐसा करनेसे उसपर ऋण नहीं रहता, ऋण माफ हो जाता है। इसी तरह कन्या बचपनसे ही माता-पिताके समर्पित रहती है। वह अपने मनकी कुछ भी नहीं रखती। माता-पिता जहाँ उसका सम्बन्ध (विवाह) करा देते हैं, वह प्रसन्नतापूर्वक वहीं चली जाती है वह अपने गोत्रको भी पतिके गोत्रमें मिला देती है। जिसने ऐसा त्याग किया है, उसपर माता-पिताका ऋण कैसे रह सकता है ? नहीं रह सकता।

प्रश्न—माँ बापका कोई सहारा न रहे तो ऐसी अवस्थामें विवाहित पुत्री माँ-बापका पालन कर सकती है या नहीं ?

उत्तर—वह असहाय माँ-बापकी सेवा कर सकती है। यदि विवाहित पुत्रीकी सन्तान है तो माँ-बाप उसके घरका अन्न-जल ले सकते हैं, उसके घरपर रह सकते हैं। परन्तु यदि उसकी कोई

सन्तान नहीं है तो माँ-बापको उसके घरका अन्न जल लेनेका अधिकार नहीं है।

माता-पिताने कन्याका दान (विवाह) कर दिया तो अब वे उसके घरका अन्न नहीं ले सकते; क्योंकि दान दी हुई वस्तुपर दाताका अधिकार नहीं रहता। परन्तु कन्यासे सन्तान (पुत्र या पुत्री) होनेपर माता-पिता कन्याके यहाँका अन्न ले सकते हैं। कारण यह है कि कन्याके पति (दामाद) ने केवल पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये ही दूसरेकी कन्या स्वीकार की है और उससे सन्तान होनेपर वह पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। अतः सन्तान होनेपर माता-पिताका कन्यापर अधिकार हो जाता है, तभी तो गोत्र न होनेपर भी दौहित्र अपने नाना-नानीका श्राद्ध-तर्पण कर सकता है।

यदि माता-पिता असहाय अवस्थामें हों तथा उनकी सेवा करनेवाला कोई न हो तो उनकी सेवा करनेकी जिम्मेवारी पुत्रीपर ही है। अतः अपनी सन्तान न होनेपर भी विवाहित पुत्रीको उनकी सेवा करनी चाहिये। दूसरी बात, वर्तमान कानूनमें पिताकी सम्पत्तिमें पुत्र और पुत्रीका समान अधिकार माना गया है। अतः वर्तमान कानूनकी दृष्टिसे भी देखा जाय तो जब पुत्रीको सम्पत्ति देनेका अधिकार है तो फिर उससे सेवा लेनेका भी माता-पिताको अधिकार है!

(५) स्त्री सम्बन्धी बातें

प्रश्न—क्या कन्या स्वयंवर कर सकती है?

उत्तर—शास्त्रोंमें स्वयंवरकी बात आती है, परन्तु जिन्होंने स्वयंवर किया है, उन्होंने कष्ट ही उठाया है। सीता, द्रौपदी, दमयन्ती आदिने स्वयंवर किया तो उन्होंने प्रायः दुःख ही पाया। आजकल जो कन्याएँ स्वयंवर करती हैं, खुद ही पतिको चुनती हैं, अपने मनसे विवाह करती हैं, वे कौन-सा सुख पाती हैं? वे

दुःख-ही-दुःख पाती हैं, भटकती ही रहती हैं।

जो कन्या स्वयंवर करती है, उसकी जिम्मेवारी खुद उसीपर रहती है। पिता कन्याका हितैषी होता है और हितैषी होकर ही वह कन्याके लिये वर ढूँढ़ता है, उसका सम्बन्ध करता है; अतः उस सम्बन्धकी जिम्मेवारी पितापर ही रहती है, कन्यापर नहीं। पिताके द्वारा सम्बन्ध करानेपर कन्यासे कहीं थोड़ी गलती भी हो जाय तो वह माफ हो जायगी; परन्तु स्वयंवर करनेवाली कन्याकी गलती माफ नहीं होगी। जैसे, पुत्र माता-पिताकी सेवा कम भी करे तो उतना दोष नहीं है; क्योंकि वह माता-पितासे उत्पन्न हुआ है, उसने जानकर सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। परन्तु गोद जानेवाला पुत्र माता-पिताकी सेवा नहीं करता तो उसको विशेष दण्ड भोगना पड़ता है, क्योंकि उसने जानकर सम्बन्ध जोड़ा है। कोई किसीके यहाँ नौकरी करता है और नौकरीमें गलती करता है तो उसको माफी नहीं होती; क्योंकि उसने नौकरी स्वयं स्वीकार की है। हाँ, दयालु मालिक उसको माफ कर सकता है, पर वह माफीका अधिकारी नहीं होता। कोई किसीको अपना गुरु बनाता है तो गुरुकी आज्ञाका पालन करना उसकी विशेष जिम्मेवारी होती है। यदि वह गुरु-आज्ञाका पालन नहीं करता, गुरुका तिरस्कार करता है, निन्दा करता है तो उसको भयंकर दण्ड भोगना पड़ता है। उसको भगवान् भी माफ नहीं कर सकते। भगवान् कुपित हो जायँ तो गुरु माफ करा सकता है, पर गुरु कुपित हो जायँ तो भगवान् भी माफ नहीं करा सकते। अतः स्वयंवर करनेवाली कन्यापर विशेष जिम्मेवारी रहती है।

प्रश्न—कन्या विवाह न करके साधन-भजनमें ही जीवन बिताना चाहे तो क्या यह ठीक है?

उत्तर—कन्याके लिये विवाह न करना उचित नहीं है; क्योंकि वह स्वतन्त्र रहकर अपना जीवन निर्वाह कर ले—ऐसा बहुत कठिन है अर्थात् विवाह न करनेसे उसके जीवन निर्वाहमें बहुत कठिनता

आयेगी। जबतक माँ बाप हैं, तबतक तो ठीक है, पर जब माँ-बाप नहीं रहते, तो फिर प्रायः भाईलोग (अपनी स्त्रियोंके वशीभूत होनेसे) बहनका आदर नहीं करते, प्रत्युत बहनका तिरस्कार करते हैं, उसको हीन दृष्टिसे देखते हैं। भौजाइयाँ भी उसको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती हैं। इससे कन्याके मनमें पराधीनताका अनुभव होता है। अतः विवाह कर लेना अच्छा है।

हमने ऐसे स्त्री पुरुषोंको भी देखा है, जिन्होंने विवाहसे पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली कि हम स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध न रखकर केवल साधन भजन ही करेंगे; और वे अपनी प्रतिज्ञा निभाते आये हैं। यद्यपि आजके जमानेमें ऐसे लड़के मिलने कठिन हैं, जो केवल साधन-भजनके लिये ही विवाह करें, तथापि उनका मिलना असम्भव नहीं है।

मीराबाईकी तरह जो बचपनसे ही भजन-स्मरणमें लग जाय, उसकी तो बात ही अलग है; परन्तु यह विधान नहीं है, भाव है। इस भावमें भी कठिनता आती है। मीराबाईके जीवनमें बहुत कठिनता आयी थी, पर भगवान्‌के दृढ़ विश्वासके बलपर वह सब कठिनताओंको पार कर गयी। ऐसा दृढ़ विश्वास बहुत कम होता है। जिसमें ऐसा दृढ़ विश्वास हो, उसके लिये यह विधान नहीं है कि वह विवाह न करे अथवा वह विवाह करे। तात्पर्य है कि भगवान्‌पर दृढ़ श्रद्धा-विश्वास हो तो मनुष्य कहीं भी रहे, वह श्रेष्ठ हो ही जायगा।

प्रश्न—क्या स्त्रीको साधु-संन्यासी बनना उचित है?

उत्तर—पुरुषको तो यह अधिकार है कि उसको संसारसे वैराग्य हो जाय तो वह घर आदिका त्याग करके, विरक्त होकर भजन-स्मरण करे, पर स्त्रियोंके लिये ऐसी आज्ञा हमने कहीं देखी नहीं है। अतः स्त्रीको साधु-संन्यासी बनना उचित नहीं है। उसको तो घरमें ही रहकर अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। वह घरमें ही त्यागपूर्वक, संयमपूर्वक रहे—इसीमें उसकी महिमा है।

वास्तवमें त्याग-वैराग्यमें जो तत्त्व है, वह साधु-संन्यासी

बननेमें नहीं है। जिसके भीतर पदार्थोंकी गुलामी नहीं है, वह घरमें रहते हुए ही साध्वी है, संन्यासिनी है।

प्रश्न—पतिव्रता, साध्वी और सती किसे कहते हैं?

उत्तर—यद्यपि शब्दकोशके अनुसार पतिव्रता, साध्वी और सती—तीनों नाम एक ही अर्थमें हैं, तथापि तीनोंमें भेद किया जाय तो पतिके रहते हुए जो अपने नियममें दृढ़ रहती है, वह 'पतिव्रता' है; पतिके न रहनेपर जो अपने नियममें, त्यागमें दृढ़ रहती है, वह 'साध्वी' है; और जो सत्यका पालन करती है, जिसका पतिके साथ दृढ़ सम्बन्ध रहता है, जो पतिके मरनेपर उसके साथ सती हो जाती है, वह 'सती' है।

प्रश्न—सतीप्रथा उचित है या अनुचित?

उत्तर—सती होना 'प्रथा' है ही नहीं। पतिके साथ जल जाना सती होना नहीं है। जिसके मनमें सत् आ जाता है, उत्साह आ जाता है, वह आगके बिना भी जल जाती है और उसको जलनेका कोई कष्ट भी नहीं होता। यह कोई प्रथा नहीं है कि वह ऐसा ही करे, प्रत्युत यह तो उसका सत्य है, धर्म है, शास्त्र-मर्यादापर विश्वास है।

हरदोई जिलेमें इकनोरा नामका गाँव है। वहाँ एक लड़की अपनी ननिहालमें थी। पति बीमार था, वह मर गया। उसको पतिके मरनेका समाचार मिला। उसने मामासे पूछा कि सती सुलोचनाको पतिका सिर नहीं मिलता तो वह क्या करती? मामाने कहा कि मुझे क्या पता? उसने कहा कि मामाजी! मैं सती होऊँगी। मामाने कहा कि ऐसा नहीं करना बेटी! उसने कहा कि मैं करती नहीं हूँ, होता है। उसने दीपक जलाया और उसपर अपनी अँगुली रखी तो उसकी अँगुली मोमबत्तीकी तरह जलने लगी। उसने मामासे कहा कि आप मुझे सती होनेकी आज्ञा देते हैं या नहीं। नहीं तो आपका यह सारा घर भस्म हो जायगा। मामाने कहा कि अच्छा तेरी जैसी मरजी हो, वैसा कर। उसने जलती हुई अँगुलीको एक दीवारपर बुझाया और

घरसे बाहर जाकर पीपलवृक्षके नीचे खड़ी हो गयी तथा मामासे कहा कि मुझे लकड़ी दो। मामाने कहा कि हम न लकड़ी देंगे, न आग। गाँवके लोग वहाँ इकट्ठे हो गये थे। उसने हाथ जोड़कर सूर्यभगवान्‌से प्रार्थना की कि हे नाथ! आप आग दो। ऐसा कहते ही वह वहाँ खड़ी खड़ी अपने-आप जल गयी! उस आगसे पीपलके पत्ते जल गये। यह सब गाँवके लोगोंने अपनी आँखोंसे देखा। वहाँके मुसलमानोंसे पूछा गया तो उन्होंने भी कहा कि यह सब घटना हमारे सामने घटी है। करपात्रीजी महाराज भी वहाँ गये थे और उन्होंने दीवारपर काली लकीर देखी, जहाँ उसने अपनी जलती हुई अँगुली बुझायी थी और पीपलके जले हुए पत्ते भी देखे।

तात्पर्य है कि यह सतीप्रथा नहीं है। यह तो उसका खुदका धार्मिक उत्साह है। इस विषयमें प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीने 'सतीधर्म हिन्दूधर्मकी रीढ़ है' नामक पुस्तक लिखी है*, उसको पढ़ना चाहिये।

प्रश्न—पतिव्रताके भाव और आचरण कैसे होते हैं?

उत्तर—उसमें धार्मिक भावोंकी प्रबलता होती है, जिससे वह तन-मनसे पतिकी सेवा करती है। पतिके मनमें ही अपना मन मिला देती है, अपना कुछ नहीं रखती। उसका मन पतिमें ही खिंचा रहता है। उसका यह पातिव्रत ही उसकी रक्षा करता है।

प्रायः पतिव्रताका सम्बन्ध पूर्वजन्मके पतिके साथ ही होता है। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि बचपनमें कन्याको अच्छी शिक्षा, अच्छा संग मिलनेसे उसके भाव अच्छे बन जाते हैं तो वह विवाह होनेपर पतिव्रता बन जाती है।

प्रश्न—पतिव्रताकी पहचान क्या है?

* इस पुस्तकके मिलनेका पता है—संकीर्तन-भवन, धार्मिक ट्रस्ट, प्रतिष्ठानपुर (झूसी), इलाहाबाद।

उत्तर—पतिव्रताके घरमें शान्ति रहती है और सभी अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले होते हैं। उसकी सन्तान भी श्रेष्ठ, माता-पिताकी भक्त होती है। पड़ोसियोंपर, मोहल्लेवालोंपर भी उसके भावोंका असर पड़ता है।

पतिव्रताको देखनेवालेका दुर्भाव मिट जाता है। परन्तु सब जगह यह नियम लागू नहीं होता; क्योंकि पतिव्रताको देखकर अपने भीतरके अच्छे भाव ही जाग्रत् होते हैं। जिसके भीतर अच्छे भाव, संस्कार नहीं हैं, उसपर पतिव्रताका उतना असर नहीं पड़ता। जैसे, एक व्याधने दमयन्तीको अजगरके मुखसे छुड़ाया, पर उसके रूपको देखकर वह मोहित हो गया और उसके भीतर दुर्भाव पैदा हो गया। दमयन्तीके शापसे वह वहीं भस्म हो गया। युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा, सात्त्विक पुरुष थे, परन्तु दुर्योधनपर उनका असर नहीं पड़ा।

प्रश्न—क्या वर्तमान समयमें पातिव्रतधर्मका पालन हो सकता है?

उत्तर—पातिव्रतधर्मका पालन करनेमें वर्तमान समय कोई बाधक नहीं है। अपने धर्मका पालन करनेमें सबको सदासे स्वतन्त्रता है। धर्मसे विरुद्ध काम करनेमें ही शास्त्र, धर्म, मर्यादा आदि बाधक हैं।

प्रश्न—क्या पति पत्नीका त्याग कर सकता है?

उत्तर—पत्नी अच्छी है, सुशील है, पर रंगकी काली है, माँके साथ उसकी नहीं बनती, कभी माँका कहना नहीं मानती और माँ कहती है कि इसको छोड़ दो—ऐसी स्थितिमें जो पत्नीको छोड़ देता है, वह महापाप करता है, घोर अन्याय करता है; अतः वह घोर नरकोंमें जायगा। आजकलके लड़के पत्नीको दोषी समझकर उसका त्याग कर देते हैं तो क्या वे खुद सर्वथा दूधके धोये हुए हैं! अतः पत्नीका कभी त्याग नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—अगर पत्नी दुश्चरित्रा, व्यभिचारिणी हो तो उसका

त्याग करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—आजकलके जमानेमें जहाँतक बने, उस पत्नीका त्याग नहीं करना चाहिये। अपनी सामर्थ्यके अनुसार उसपर शासन करना चाहिये, उसको सुधारनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यदि उसको दण्ड ही देना हो तो उससे बातचीत न करे और उसके हाथसे बना भोजन भी न करे।

प्रश्न—पतिका आधा पुण्य पत्नीको और पत्नीका आधा पाप पतिको मिलता है—ऐसा क्यों?

उत्तर—पत्नीने अपने माता-पिता, भाई-भौजाई आदि सबका, घरभरका त्याग किया है और पुण्य त्यागसे होता है। उसने अपने गोत्रतकका त्याग करके पतिके मनमें अपना मन मिला दिया है! अतः वह पुण्यकी भागी होती है। पति सन्ध्या-गायत्री आदि करता है तो उसका भी आधा फल (पुण्य) पत्नीको मिलता है। इसीलिये पतिके दो जनेऊ होते हैं—एक अपना और एक पत्नीका।

स्त्रीको बचपनमें शिक्षा देना माता-पिता, भाई आदिके अधीन होता है और विवाह होनेपर शिक्षा देना पतिके अधीन होता है। अगर पतिसे अच्छी शिक्षा न मिलनेके कारण पत्नी पाप करती है तो उसका आधा पाप पतिको लगता है।

अगर पति अच्छी शिक्षा देता है, पर पत्नी पतिका कहना नहीं मानती, पाप करती है तो उसका आधा पाप पतिको नहीं लगता; क्योंकि उसने अपनी जिम्मेवारी खुदपर ही ली है। ऐसे ही जो स्त्री पतिके कहनेमें चलती है, पतिके अधीन रहती है, वही पतिके आधे पुण्यकी भागीदार होती है। जो पतिके कहनेमें नहीं चलती, वह पतिके आधे पुण्यकी भागीदार नहीं होती।

प्रश्न—विधर्मी लोग किसी स्त्रीका अपहरण करके ले जायँ तो उस स्त्रीको क्या करना चाहिये?

उत्तर—उसको जहाँतक बने, वहाँसे छूटनेका प्रयास करना

चाहिये और मौका लगनेपर वहाँसे भाग जाना चाहिये। कोई भी उपाय न चले तो भगवान्‌को पुकारना चाहिये। भगवान् किसी-न-किसी प्रकारसे छुड़ा देंगे

एक स्त्रीको मुखमें कपड़ा ठूँसकर, दोनों हाथ पीठके पीछे बाँधकर और ऊपरसे बुरका पहनाकर विधर्मीलोग रेलमें ले जा रहे थे। लखनऊ स्टेशनपर जब टीटी टिकट देखनेके लिये उस स्त्रीके पास आकर खड़ा हुआ, तब उस स्त्रीने अपने पैरसे टीटीका पैर दबाया। टीटीने विचार किया कि इसने मेरा पैर क्यों दबाया! इसमें कुछ-न कुछ रहस्य है! उसने रेलवे पुलिसको बुलाया। पुलिसने जाँच करके उस स्त्रीको छुड़ा लिया और उसका अपहरण करनेवालोंको पकड़ लिया। ऐसे ही नोआखालीमें विधर्मीने एक स्त्रीको पकड़ लिया। उस स्त्रीने भगवान्‌को पुकारा। इतनेमें दूसरा विधर्मी आया और कहने लगा कि इसको मैं अपनी स्त्री बनाऊँगा। इसी बातको लेकर दोनों आदमियोंमें लड़ाई हो गयी। वे दोनों आपसमें लड़कर मर गये और उस स्त्रीकी रक्षा हो गयी।

प्रश्न—जिसकी स्त्रीको विधर्मी ले गये, उस पुरुषका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—पुरुषमें उसको छुड़ाकर लानेकी सामर्थ्य हो और वह प्रसन्नतासे आना चाहे तो उसको अपने घरमें ले आना चाहिये। कारण कि उसके साथ जबर्दस्ती हुई है, अतः उसका एक पतिव्रत नहीं रहा, पर उसका धर्म नहीं बिगड़ा। धर्म तो स्वयं (अपनी इच्छासे) छोड़नेपर ही बिगड़ता है। जबर्दस्ती करके कोई भी किसीका धर्म नहीं छुड़ा सकता, उसको धर्मभ्रष्ट नहीं कर सकता। कोई जबर्दस्ती किसीके मुखमें गोमांस भी दे दे, तो भी वह उसका धर्म नहीं छुड़ा सकता। अतः यदि उस स्त्रीका मन नहीं बिगड़ा है, उसने संगका सुख नहीं लिया है तो उसका पातिव्रतधर्म नष्ट नहीं हुआ है। इसलिये यदि वह वापिस आ जाय तो उसको गीता, रामायण,

भागवत आदिके पाठद्वारा तथा गंगाजलसे स्नान कराकर शुद्ध कर लेना चाहिये। यह सब करनेके बाद जब वह रजस्वला हो जायगी, तब वह सर्वथा शुद्ध हो जायगी—'**रजसा शुद्ध्यते नारी**'।

जमदग्नि ऋषिकी पत्नी रेणुका प्रतिदिन अपने पातिव्रतधर्मके प्रभावसे कपड़ेमें जल भरकर लाया करती थी। एक दिन उसको नदीके किनारेपर सोनेकी तरह चमकीले एवं सुन्दर बाल दीखे। उसके मनमें आया कि ये बाल इतने सुन्दर हैं तो वह पुरुष कितना सुन्दर होगा! इस तरह मनमें विकार आते ही उसका धर्म नष्ट हो गया और वह पहलेकी तरह कपड़ेमें जल भरकर नहीं ला सकी।

इन्द्रने गौतम ऋषिका रूप धारण करके अहल्याको भ्रष्ट किया तो उसका धर्म भ्रष्ट नहीं हुआ, प्रत्युत एक पतिव्रत नष्ट हुआ। यद्यपि पतिने क्रोधमें आकर उसको पत्थरका बना दिया, तथापि भगवान् रामने उसका उद्धार कर दिया; क्योंकि वह अपने धर्ममें दृढ़ थी।

गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दका शुद्धि एवं पवित्रताका बहुत खयाल रखा करते थे। उन्होंने भी कहा था कि विधर्मियोंने जबर्दस्ती करके जिन स्त्रियोंको भ्रष्ट किया है, उनका धर्म भ्रष्ट नहीं हुआ है। अतः यदि वे हिन्दूधर्ममें आना चाहें तो उनको ले लेना चाहिये और गंगास्नान, गीता रामायणपाठ आदिसे शुद्ध करा लेना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा था कि यदि दूसरे धर्मको माननेवाला व्यक्ति हिन्दूधर्ममें आना चाहे तो उसको ले लेना चाहिये अर्थात् वह भी हिन्दू हो सकता है और हिन्दूधर्मकी पद्धतिके अनुसार जप-ध्यान, पूजा-पाठ आदि कर सकता है।

प्रश्न—पत्नी अपनी इच्छासे कहीं चली जाय और फिर लौट आये तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—उसको अपनी पत्नी नहीं मानना चाहिये, उसके साथ पत्नी जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। जैसे, सन्त कूबाजी महाराजकी पत्नी उनको छोड़कर दूसरेके पास चली गयी। वहाँ

उसकी सन्तान भी हो गयी। परन्तु उसका वह पति मर गया। अब उसके लिये जीवन-निर्वाह करना भी बड़ा मुश्किल हो गया। अतः वह पुनः कुब्जाजीके पास आ गयी। कुब्जाजीने उसके निर्वाहके लिये अन्न, जल, वस्त्र आदिका प्रबन्ध कर दिया, पर उसको अपनी पत्नी नहीं माना।

प्रश्न—पति दुश्चरित्र हो तो पत्नीको क्या करना चाहिये?

उत्तर—पत्नीको दुश्चरित्र पतिका त्याग नहीं करना चाहिये, प्रत्युत अपने पातिव्रतधर्मका पालन करते हुए उसको समझाना चाहिये। जैसे मन्दोदरीने रावणको समझाया, पर उसका त्याग नहीं किया।

विवाहके समय स्त्री पुरुष दोनों ही परस्पर वचनबद्ध होते हैं। उसके अनुसार पतिको सलाह देनेका, पतिसे अपने मनकी बात कहनेका पत्नीको अधिकार है। गान्धारी कितने ऊँचे दर्जेकी पतिव्रता थी कि जब उसने सुना कि जिससे मेरा विवाह होनेवाला है, उसके नेत्र नहीं हैं, तो उसने भी अपने नेत्रोंपर पट्टी बाँध ली; क्योंकि नेत्रोंका जो सुख पतिको नहीं है, वह सुख मुझे भी नहीं लेना है! परन्तु समय आनेपर उसने भी पति (धृतराष्ट्र) को समझाया कि आपको दुर्योधनकी बात नहीं माननी चाहिये, नहीं तो कुलका नाश हो जायगा। ऐसी सलाह उसने कई बार दी, पर धृतराष्ट्रने उसकी सलाह नहीं मानी, जिससे कुलका नाश हो गया। तात्पर्य है कि पतिको अच्छी सलाह देनेका पत्नीको पूरा अधिकार है।

शास्त्रोंमें आया है कि जो पतिव्रता स्त्री तन-मनसे पतिकी सेवा करती है, अपने धर्मका पालन करती है, वह मृत्युके बाद पतिलोकमें (पतिके पास) जाती है। अगर पति दुश्चरित्र है तो पतिका लोक नरक होगा। अतः पतिव्रता स्त्रीका लोक भी नरक ही होना चाहिये! परन्तु पतिव्रता स्त्री नरकोंमें नहीं जा सकती; क्योंकि उसने शास्त्रकी, भगवान्‌की, सन्त महात्माओंकी आज्ञाका पालन किया है, पातिव्रतधर्मका पालन किया है। अतः वह अपने

पातिव्रतधर्मके प्रभावसे पतिका उद्धार कर देगी अर्थात् जो लोक पत्नीका होगा, वही लोक पतिका हो जायगा। तात्पर्य है कि अपने कर्तव्यका पालन करनेवाला मनुष्य दूसरोंका उद्धार करनेवाला बन जाता है।

प्रश्न—अगर पति पत्नीको व्यभिचारके लिये प्रेरित करे तो पत्नीको क्या करना चाहिये?

उत्तर—पतिको यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी स्त्री दूसरों-को दे, क्योंकि पत्नीके पिताने पतिको ही दान दिया है। अन्न, वस्त्र आदिका दान लेनेवाला तो अन्न आदि दूसरोंको दे सकता है, पर कन्यादान लेनेवाला पति दूसरोंको अपनी पत्नी नहीं दे सकता। अगर वह ऐसा करता है तो वह महापापका भागी होता है। ऐसी स्थितिमें पत्नीको पतिकी बात बिलकुल नहीं माननी चाहिये। उसको अपने पतिसे साफ कह देना चाहिये कि मेरे पिताने आपको ही कन्यादान किया है; अतः दूसरोंको देनेका आपका अधिकार नहीं है। इस विषयमें वह पतिकी आज्ञा भंग करती है तो उसको कोई दोष नहीं लगता, क्योंकि पतिकी यह आज्ञा अन्याय है और अन्यायको स्वीकार करना अन्यायको प्रोत्साहित करना है, जो कि सबके लिये अनुचित है। दूसरी बात, अगर पत्नी पतिकी धर्मविरुद्ध आज्ञाका पालन करेगी तो इस पापके कारण पतिको नरकोंकी प्राप्ति होगी। अतः पत्नीको ऐसी आज्ञाका पालन नहीं करना चाहिये, जिससे पतिको नरकोंमें जाना पड़े।

अगर पति स्वयं भी शास्त्रनियमके विरुद्ध स्त्रीसंग करता है तो वह अन्याय, पाप करता है। धर्मयुक्त काम भगवान्‌का स्वरूप है—'**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥**' (गीता ७। ११); अतः इसमें दोष, पाप नहीं है। परन्तु धर्मसे विरुद्ध स्त्रीको मनमाना काममें लेना अन्याय है। मनुष्यको सदा शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार ही प्रत्येक कार्य करना चाहिये (गीता १६। २४)।

प्रश्न—अगर पति मांस, मदिरा आदिका सेवन करता हो तो

पत्नीको क्या करना चाहिये ?

उत्तर—पतिको समझाना चाहिये, निषिद्ध आचरणसे छुड़ाना चाहिये। अगर पति न माने तो लाचारी है, पर पतिको समझाना स्त्रीका धर्म है, अधिकार है। पत्नीको तो अपना खान पान शुद्ध ही रखना चाहिये।

प्रश्न—पति मार-पीट करे, दुःख दे तो पत्नीको क्या करना चाहिये ?

उत्तर—पत्नीको तो यही समझना चाहिये कि मेरे पूर्वजन्मका कोई बदला है, ऋण है, जो इस रूपमें चुकाया जा रहा है; अतः मेरे पाप ही कट रहे हैं और मैं शुद्ध हो रही हूँ। पीहरवालोंको पता लगनेपर वे उसको अपने घर ले जा सकते हैं; क्योंकि उन्होंने मार-पीटके लिये अपनी कन्या थोड़े ही दी थी!

प्रश्न—अगर पीहरवाले भी उसको अपने घर न ले जायँ तो वह क्या करे ?

उत्तर—फिर तो उसको अपने पुराने कर्मोंका फल भोग लेना चाहिये, इसके सिवाय बेचारी क्या कर सकती है! उसको पतिकी मार-पीट धैर्यपूर्वक सह लेनी चाहिये। सहनेसे पाप कट जायँगे और आगे सम्भव है कि पति स्नेह भी करने लग जाय। यदि वह पतिकी मार-पीट न सह सके तो पतिसे कहकर उसको अलग हो जाना चाहिये और अलग रहकर अपनी जीविका-सम्बन्धी काम करते हुए एवं भगवान्‌का भजन-स्मरण करते हुए निधड़क रहना चाहिये।

पुरुषको कभी भी स्त्रीपर हाथ नहीं चलाना चाहिये। शिखण्डी भीष्मजीको मारनेके लिये ही पैदा हुआ था; परन्तु वह जब युद्धमें भीष्मजीके सामने आता है, तब भीष्मजी बाण चलाना बन्द कर देते हैं कारण कि शिखण्डी पूर्वजन्ममें स्त्री था और इस जन्ममें भी स्त्रीरूपसे ही जन्मा था, पीछे उसको पुरुषत्व प्राप्त हुआ था। अतः भीष्मजी उसको स्त्री ही मानते हैं और उसपर बाण नहीं चलाते।

विपत्तिके दिन किसी पापके कारण ही आते हैं। उसमें उत्साहपूर्वक भगवान्‌का भजन-स्मरण करनेसे दुगुना लाभ होता है। एक तो पापोंका नाश होता है और दूसरा भगवान्‌को पुकारनेसे भगवद्विश्वास बढ़ता है। अतः विपत्ति आनेपर स्त्रियोंको हिम्मत नहीं हारनी चाहिये।

विपत्ति आनेपर आत्महत्या करनेका विचार भी मनमें नहीं लाना चाहिये; क्योंकि आत्महत्या करनेका बड़ा भारी पाप लगता है। किसी मनुष्यकी हत्याका जो पाप लगता है, वही पाप आत्महत्याका लगता है। मनुष्य सोचता है कि आत्महत्या करनेसे मेरा दुःख मिट जायगा, मैं सुखी हो जाऊँगा। यह बिलकुल मूर्खताकी बात है; क्योंकि पहलेके पाप तो कटे नहीं, नया पाप और कर लिया! जिन्होंने आत्महत्याका प्रयास किया और बच गये, उनसे यह बात सुनी है कि आत्महत्या करनेमें बड़ा भारी कष्ट होता है और पश्चात्ताप होता है कि मैं ऐसा नहीं करता तो अच्छा रहता, अब क्या करूँ? आत्महत्या करनेवाले प्रायः भूत प्रेत बनते हैं और वहाँ भूखे-प्यासे रहते हैं, दुःख पाते हैं। तात्पर्य है कि आत्महत्या करनेवालोंकी बड़ी भारी दुर्गति होती है।

प्रश्न—अगर पति त्याग कर दे तो स्त्रीको क्या करना चाहिये?

उत्तर—वह अपने पिताके घरपर रहे। पिताके घरपर रहना न हो सके तो ससुराल अथवा पीहरवालोंके नजदीक किरायेका कमरा लेकर उसमें रहे और मर्यादा, संयम, ब्रह्मचर्यपूर्वक अपने धर्मका पालन करे, भगवान्‌का भजन स्मरण करे। पितासे या ससुरालसे जो कुछ मिला है, उससे अपना जीवन-निर्वाह करे। अगर धन पासमें न हो तो घरमें ही रहकर अपने हाथोंसे कातना-गूँथना, सीना-पिरोना आदि काम करके अपना जीवन-निर्वाह करे। यद्यपि इसमें कठिनता होती है, पर तपमें कठिनता ही होती है, आराम नहीं होता। इस तपसे उसमें

आध्यात्मिक तेज बढ़ेगा, उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा।

माता पिता, भाई-भौजाई आदिको विशेष ध्यान देना चाहिये कि बहन-बेटी धर्मकी मूर्ति होती है; अतः उसका पालन-पोषण करनेका बहुत पुण्य होता है। उनको यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ कर लेनी चाहिये—'***बिपति काल कर सतगुन नेहा***' (मानस, किष्किन्धा० ७। ३) अर्थात् विपत्तिके समय बहन-बेटी आदिसे सौगुना स्नेह करे। यदि वे ऐसा न कर सकें तो लड़कीको विचार करना चाहिये कि जंगलमें रहनेवाले प्राणियोंका भी भगवान् पालन-पोषण करते हैं, तो क्या वे मेरा पालन-पोषण नहीं करेंगे! सबके मालिक भगवान्के रहते हुए मैं अनाथ कैसे हो सकती हूँ! इस बातको दृढ़तासे धारण करके भगवान्के भरोसे निधड़क रहना चाहिये, निर्भय, निःशोक, निश्चिन्त और निःशंक रहना चाहिये एक विधवा बहन थी। उसके पास कुछ नहीं था। ससुरालवालोंने उसके गहने भी दबा लिये। वह कहती थी कि मुझे चिन्ता है ही नहीं! दो हाथोंके पीछे एक पेट है, फिर चिन्ता किस बातकी!

लड़कियोंको बचपनसे ही कातना-गूँथना, सीना-पिरोना, पढ़ना-पढ़ाना आदि सीख लेना चाहिये। विवाह होनेपर पतिकी सेवामें कमी नहीं रखनी चाहिये, पर भीतरमें भरोसा भगवान्का ही रखना चाहिये। असली सहारा भगवान्का ही है। ऐसा सहारा न पतिका है, न पुत्रका है और न शरीरका ही है—यह बिलकुल सच्ची बात है। अतः यदि पति त्याग कर दे तो घबराना नहीं चाहिये। इस विषयमें अपनी कोई त्रुटि हो तो तत्काल सुधार कर लेना चाहिये और अपनी कोई त्रुटि न हो तो बिलकुल निधड़क रहना चाहिये। हृदयमें कमजोरी तो अपने भाव और आचरण ठीक न रहनेसे ही आती है। अपने भाव और आचरण ठीक रहनेसे हृदयमें कमजोरी कभी आती ही नहीं। अतः अपने भावों और आचरणोंको सदा शुद्ध, पवित्र रखते हुए भगवान्का भजन-स्मरण करते रहना चाहिये। भगवान्के

भरोसे किसी बातकी परवाह नहीं करनी चाहिये।

आजके युवकोंको चाहिये कि वे स्त्रियोंको छोड़ें नहीं। स्त्रीका त्याग करना महापाप है, बड़ा भारी अन्याय है। ऐसा करनेवाले भयंकर नरकोंमें जाते हैं।

प्रश्न—पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है या नहीं?

उत्तर—अगर पहली स्त्रीसे सन्तान न हुई हो तो पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये, केवल सन्तान-उत्पत्तिके लिये पुरुष शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार दूसरा विवाह कर सकता है। अपने सुखभोगके लिये वह दूसरा विवाह नहीं कर सकता; क्योंकि यह मनुष्य-शरीर अपने सुख-भोगके लिये है ही नहीं।

पुनर्विवाह अपनी पूर्वपत्नीकी आज्ञासे, सम्मतिसे ही करना चाहिये और पत्नीको भी चाहिये कि वह पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये पुनर्विवाहकी आज्ञा दे दे। पुनर्विवाह करनेपर भी पतिको अपनी पूर्वपत्नीका अधिकार सुरक्षित रखना चाहिये; उसका तिरस्कार, निरादर कभी नहीं करना चाहिये, प्रत्युत उसको बड़ी मानकर दोनोंको उसका सम्मान करना चाहिये।

जिसकी सन्तान तो हो गयी, पर स्त्री मर गयी, उसको पुनर्विवाह करनेकी जरूरत ही नहीं है; क्योंकि वह पितृऋणसे मुक्त हो गया। परन्तु जिसकी भोगासक्ति नहीं मिटी है, वह पुनर्विवाह कर सकता है; क्योंकि अगर वह पुनर्विवाह नहीं करेगा तो वह व्यभिचारमें प्रवृत्त हो जायगा, वेश्यागामी हो जायगा, जिससे उसको भयंकर पाप लगेगा। अतः इस पापसे बचनेके लिये और मर्यादामें रहनेके लिये उसको शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार पुनर्विवाह कर लेना चाहिये।

प्रश्न—पहले राजालोग अनेक विवाह करते थे तो क्या ऐसा करना उचित था?

उत्तर—जो राजालोग अपने सुखभोगके लिये अधिक विवाह करते थे, वे आदर्श नहीं माने गये हैं। केवल राजा

होनेमात्रसे कोई आदर्श नहीं हो जाता। जो शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चलते थे, धर्मका पालन करते थे, वे ही राजालोग आदर्श माने गये हैं।

वास्तवमें विवाह करना कोई ऊँचे दर्जेकी चीज नहीं है और आवश्यक भी नहीं है। आवश्यक तो परमात्मप्राप्ति करना है। इसीके लिये मनुष्य शरीर मिला है, विवाह करनेके लिये नहीं। स्त्री-पुरुषका संग तो देवतासे लेकर भूत-प्रेत आदितक स्थावर-जंगम हरेक योनिमें होता है; अतः यह कोई महत्ताकी बात नहीं है। परन्तु परमात्मप्राप्तिका अवसर, अधिकार, योग्यता आदि तो मनुष्यजन्ममें ही है। मनुष्य परमात्मप्राप्तिका जन्मजात अधिकारी है। जो विचारके द्वारा अपनी विषयासक्तिको, भोगासक्तिको नहीं छोड़ पाते, ऐसे कमजोर मनुष्योंके लिये ही विवाहका विधान किया गया है। भोगोंको भोगकर उनसे विरक्त होनेके लिये, उनमें अरुचि करनेके लिये ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। जो विषयासक्तिको नहीं छोड़ पाते, उनपर ही पितृऋण रहता है अर्थात् उपकुर्वाण ब्रह्मचारीपर ही वंश परम्परा चलानेका दायित्व रहता है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी और भगवान्‌के भक्तपर नहीं। तात्पर्य है कि पितृऋण उसी पुरुषपर रहता है, जो भोगासक्ति नहीं मिटा सका। जिसमें भोगासक्ति नहीं है, उसपर कोई ऋण रहता ही नहीं, चाहे वह कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी आदि कोई भी क्यों न हो! कारण कि इन्कमपर ही टैक्स लगता है, मालपर ही जगात लगती है। जिसके पास इन्कम है ही नहीं, उसपर टैक्स किस बातका? माल है ही नहीं तो जगात किस बातकी?

प्रश्न—स्त्री पुनर्विवाह क्यों नहीं कर सकती?

उत्तर—माता-पिताने कन्यादान कर दिया तो अब उसकी कन्या संज्ञा ही नहीं रही; अतः उसका पुनः दान कैसे हो सकता है? अब उसका पुनर्विवाह करना तो पशुधर्म ही है।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥

(मनुस्मृति ९। ४७; महाभारत वन० २९४। २६)

'कुटुम्बमें धन आदिका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार दी जाती है और 'मैं दूँगा'—यह वचन भी एक ही बार दिया जाता है। सत्पुरुषोंके ये तीनों कार्य एक ही बार होते हैं।'

शास्त्रीय, धार्मिक, शारीरिक और व्यावहारिक—चारों ही दृष्टियोंसे स्त्रीके लिये पुनर्विवाह करना अनुचित है। शास्त्रीय दृष्टिसे देखा जाय तो शास्त्रमें स्त्रीको पुनर्विवाहकी आज्ञा नहीं दी गयी है। धार्मिक दृष्टिसे देखा जाय तो पितृऋण पुरुषपर ही रहता है। स्त्रीपर पितृऋण आदि कोई ऋण नहीं है। शारीरिक दृष्टिसे देखा जाय तो स्त्रीमें कामशक्तिको रोकनेकी ताकत है, एक मनोबल है। व्यावहारिक दृष्टिसे देखा जाय तो पुनर्विवाह करनेपर उस स्त्रीकी पूर्वसन्तान कहाँ जायगी? उसका पालन-पोषण कौन करेगा? क्योंकि वह स्त्री जिससे विवाह करेगी, वह उस सन्तानको स्वीकार नहीं करेगा। अतः स्त्रीजातिको चाहिये कि वह पुनर्विवाह न करके ब्रह्मचर्यका पालन करे, संयमपूर्वक रहे।

शास्त्रमें तो यहाँतक कहा गया है कि जिस स्त्रीकी पाँच-सात सन्तानें हैं, वह भी यदि पतिकी मृत्युके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करती है तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी गतिमें जाती है। फिर जिसकी सन्तान नहीं है, वह यदि पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्यका पालन करती है तो उसकी नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी गति होनेमें कहना ही क्या है?

प्रश्न—यदि युवा स्त्री विधवा हो जाय तो उसको क्या करना चाहिये?

उत्तर—जीवित अवस्थामें पति जिन बातोंको अच्छा मानते थे और जो बातें उनके अनुकूल थीं, उनकी मृत्युके बाद भी विधवा स्त्रीको उन्हींके अनुसार आचरण करते रहना चाहिये। उसको ऐसा

विचार करना चाहिये कि भगवान्‌ने जो प्रतिकूलता भेजी है, यह मेरी तपस्याके लिये है। जान बूझकर की गयी तपस्यासे यह तपस्या बहुत ऊँची है। भगवान्‌के विधानके अनुसार किये गये तप, संयमकी बहुत अधिक महिमा है। ऐसा विचार करके उसको मनमें हर समय उत्साह रखना चाहिये कि मैं कैसी भाग्यशालिनी हूँ कि भगवान्‌ने मेरेको ऐसा तप करनेका सुन्दर अवसर दिया है! भागवतमें आया है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ८)

'जो मनुष्य क्षण क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे आपकी कृपाका ही भलीभाँति अनुभव करता रहता है और प्रारब्धानुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है, उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्‌गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित करता रहता है—इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला मनुष्य ठीक वैसे ही आपके परमपदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र!'

विधवा स्त्रीको अपने चरित्रकी विशेष रक्षा करनी चाहिये। अगर वह व्यभिचार करती है तो वह अपने दोनों कुलोंको कलंकित करती है, मर्यादाका नाश करती है और मरनेके बाद घोर नरकोंमें जाती है। अतः उसको मर्यादामें रहना चाहिये, धर्म-विरुद्ध काम नहीं करना चाहिये। माता कुन्तीकी तरह उसको अपने वैधव्य-धर्मका पालन करना चाहिये। माता कुन्तीको याद करनेसे अपने धर्मके पालनका बल मिलता है।

प्रश्न—आजकल स्त्रीको पुरुषके समान अधिकार देनेकी बात कही जाती है, क्या यह ठीक है?

उत्तर—यह ठीक नहीं है। वास्तवमें स्त्रीका समान अधिकार नहीं है, प्रत्युत विशेष अधिकार है! कारण कि वह अपने पिता

आदिका त्याग करके पतिके घरपर आयी है; अतः घरमें उसका विशेष अधिकार होता है। वह घरकी मालकिन, बहूरानी कहलाती है। बाहर पतिका विशेष अधिकार होता है। जैसे रथ दो पहियोंसे चलता है, पर दोनों पहिये अलग अलग होते हैं। अगर दोनों पहियोंको एक साथ लगा दिया जाय तो रथ कैसे चलेगा? जैसे दोनों पहिये अलग-अलग होनेसे ही रथ चलता है, ऐसे ही पति और पत्नीका अपना अलग अलग अधिकार होनेसे ही गृहस्थ चलता है। अगर समान अधिकार दिया जाय तो स्त्रीकी तरह पुरुष गर्भ-धारण कैसे करेगा? अतः अपना-अपना अधिकार ही समान अधिकार है। इसीमें दोनोंकी स्वतन्त्रता है।

अपना-अपना अधिकार ही श्रेष्ठ है, उत्तम है। हमारेको थोड़ा अधिकार दिया गया है और पुरुषको ज्यादा अधिकार दिया गया है—इस बातको लेकर ही भीतरमें यह वासना होती है कि हमारेको समान अधिकार मिले, पूरा अधिकार मिले। इस वासनामें हेतु है—बेसमझी, मूर्खता। समझदारी हो तो थोड़ा ही अधिकार बढ़िया है। कर्तव्य अधिक होना चाहिये। कर्तव्यका दास अधिकार है, पर अधिकारका दास कर्तव्य नहीं है। यदि अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन किया जाय तो संसार सन्त-महात्मा, शास्त्र और भगवान्—ये सब अधिकार दे देते हैं।

अधिकार प्राप्त करनेकी इच्छा जन्म-मरणका हेतु है और नरकोंमें ले जानेवाली है। हमने देखा है कि एक मोहल्लेका कुत्ता दूसरे मोहल्लेमें जाता है तो उस मोहल्लेका कुत्ता उसको काटनेके लिये दौड़ता है। दोनों कुत्ते आपसमें लड़ते हैं। आगन्तुक कुत्ता नीचे गिर जाय, पैर ऊपर कर दे, नम्रता स्वीकार कर ले तो उस मोहल्लेका कुत्ता उसके ऊपर खड़ा होकर राजी हो जाता है। कारण कि वह उस मोहल्लेपर अपना अधिकार मानता है, पर आगन्तुक कुत्ता उस मोहल्लेपर अपना अधिकार नहीं मानता, उसके सामने नम्रता स्वीकार

कर लेता है तो लड़ाई मिट जाती है। इससे सिद्ध होता है कि अधिक अधिकार पानेकी लालसा तो कुत्तोंके भीतर भी रहती है। ऐसी ही लालसा यदि मनुष्योंके भीतर भी रहे तो मनुष्यता कैसी? अधिक अधिकार पानेकी लालसा नीच मनुष्योंमें होती है। जो श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं, वे अपने कर्तव्यका ही उत्साहपूर्वक तत्परतासे पालन करते हैं। कर्तव्यका पालन करनेसे उनका अधिकार स्वतः ऊँचा हो जाता है।

वास्तवमें देखा जाय तो स्त्रियोंका अधिकार कम नहीं है। वे घरकी मालकिन, गृहलक्ष्मी कहलाती हैं। घरके जितने भी लोग बाहर काम-धंधा करते हैं, वे आकर स्त्रियोंका ही आश्रय लेते हैं। स्त्रियाँ घरभरके प्राणियोंको आश्रय देनेवाली होती हैं। वे सबकी सेवा करती हैं, सबका पालन करती हैं। अतः उनका अधिकार ज्यादा है। परन्तु जब वे अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाती हैं, तभी उनके मनमें अधिक अधिकार पानेकी लालसा पैदा होती है।

प्रश्न—आजकल मँहगाईके जमानेमें स्त्री भी नौकरी करे तो क्या हर्ज है?

उत्तर—स्त्रीका हृदय कोमल होता है, अतः वह नौकरीका कष्ट, ताड़ना, तिरस्कार आदि नहीं सह सकती। थोड़ी भी विपरीत बात आते ही उसके आँसू आ जाते हैं। नौकरीको चाहे गुलामी कहो, चाहे दासता कहो, चाहे तुच्छता कहो, एक ही बात है। गुलामीको पुरुष तो सह सकता है, पर स्त्री नहीं सह सकती। अतः नौकरी, खेती, व्यापार आदिका काम पुरुषोंके जिम्मे है और घरका काम स्त्रियोंके जिम्मे है। अतः स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा, आदर घरका काम करनेमें ही है। बाहरका काम करनेमें स्त्रियोंका तिरस्कार है। यदि स्त्री प्रतिष्ठासहित उपार्जन करे तो कोई हर्ज नहीं है अर्थात् वह अपने घरमें ही रहकर जीविका-उपार्जन कर सकती है; जैसे—स्वेटर आदि बनाना, कपड़े सीना, पिरोना, बेलपत्ती आदि निकालना, भगवान्‌के चित्र सजाना आदि। ऐसा काम करनेसे वह किसीकी गुलाम, पराधीन नहीं रहेगी।

(६) महापापसे बचो

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥

(मनुस्मृति ११। ५४)

'ब्राह्मणकी हत्या करना, मदिरा पीना, स्वर्ण आदिकी चोरी करना और गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करना—ये चार महापाप हैं। इन चारोंमेंसे किसी भी महापापको करनेवालेके साथ कोई तीन वर्षतक रहता है, उसको भी वही फल मिलता है, जो महापापीको मिलता है।'*

१. ब्रह्महत्या

चारों वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है—'**वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः**' शास्त्रीय ज्ञानका जितना प्रकाश ब्राह्मण-जातिसे हुआ है, उतना और किसी जातिसे नहीं हुआ है। अतः ब्राह्मणकी हत्या करना महापाप है। इसी तरह जिससे दुनियाका हित होता है, ऐसे हितकारी पुरुषोंको, भगवद्भक्तको तथा गाय आदिको मारना भी महापाप ही है। कारण कि जिसके द्वारा दूसरोंका जितना अधिक हित होता है, उसकी हत्यासे उतना ही अधिक पाप लगता है।

२. मदिरापान

मांस, अण्डा, सुल्फा, भाँग आदि सभी अशुद्ध और नशा करनेवाले पदार्थोंका सेवन करना पाप है; परंतु मदिरा पीना महापाप है। कारण कि मनुष्यके भीतर जो धार्मिक भावनाएँ रहती हैं; धर्मकी रुचि, संस्कार रहते हैं, उनको मदिरापान नष्ट कर देता है। इससे मनुष्य महान् पतनकी तरफ चला जाता है।

मदिराके निर्माणमें असंख्य जीवोंकी हत्या होती है। गंगाजी

---

* स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबᳲश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरᳲस्तैरिति॥ (छान्दोग्य० ५। १०। ९)

सबको शुद्ध करनेवाली हैं; परंतु यदि गंगाजीमें मदिराका पात्र डाल दिया जाय तो वह शुद्ध नहीं होता। जब मदिराका पात्र भी (जिसमें मदिरा डाली जाती है) इतना अशुद्ध हो जाता है, तब मदिरा पीनेवाला कितना अशुद्ध हो जाता होगा—इसका कोई ठिकाना नहीं है। मुसलमानोंके धर्मकी यह बात मैंने सुनी है कि शरीरके जिस अंगमें मदिरा लग जाय, उस अंगकी चमड़ी काटकर फेंक देनी चाहिये।

प्रश्न—आजकल कई अंग्रेजी दवाइयोंमें मदिरा मिली रहती है। अगर स्वास्थ्यके लिये ओषधिरूपसे उनका सेवन किया जाय तो क्या महापाप लगेगा?

उत्तर—जिनमें मदिरा है, उन ओषधियोंके सेवनसे महापाप लगेगा ही।

प्रश्न—अगर परिवारमें एक व्यक्ति मदिरापान करता है तो उसके संगके कारण पूरे परिवारको महापाप लगेगा क्या?

उत्तर—नहीं। परिवारवालोंकी दृष्टिमें वह कुटुम्बी है; अतः वे मदिरा पीनेवालेका संग नहीं करते, प्रत्युत परवशतासे कुटुम्बीका संग करते हैं। ऐसे ही अगर पति मदिरा पीता हो और स्त्रीको रात-दिन उसके साथ रहना पड़ता है तो स्त्रीको महापाप नहीं लगेगा; क्योंकि वह मदिरा पीनेवालेका संग नहीं करती, प्रत्युत परवशतासे पतिका संग करती है। रुचिपूर्वक संग करनेसे ही कुसंगका दोष लगता है।

प्रश्न—जो पहले अनजानमें मदिरा पीता रहा है, पर अब होशमें आया है तो वह महापापसे कैसे शुद्ध हो?

उत्तर—वह सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करके मदिरा पीना सर्वथा छोड़ दे और निश्चय कर ले कि आजसे मैं कभी भी मदिरा नहीं पीऊँगा तो उसका सब पाप माफ हो जायगा। जीव स्वतः शुद्ध है—'**चेतन अमल सहज सुखरासी**॥' अतः अशुद्धिको छोड़ते

ही उसको नित्यप्राप्त शुद्धि प्राप्त हो जायगी, वह शुद्ध हो जायगा।

३. चोरी

किसी भी चीजकी चोरी करना पाप है; परंतु सोना, हीरा आदि बहुमूल्य चीजोंकी चोरी करना महापाप है। तात्पर्य है कि जो वस्तु जितनी अधिक मूल्यवान् होती है, उसकी चोरी करनेपर उतना ही अधिक पाप लगता है।

४. गुरुपत्नीगमन

वीर्य (ब्रह्मचर्य)-नाशके जितने उपाय हैं, वे सभी पाप हैं*; परंतु गुरुपत्नीगमन करना महापाप है। कारण कि हमें विद्या देनेवाले, हमारे जीवनको निर्मल बनानेवाले गुरुकी पत्नी माँसे भी बढ़कर होती है। अतः उसके साथ व्यभिचार करना महापाप है।

परस्त्रीगमन करना भी महापाप है, इसलिये इसको व्यभिचार अर्थात् विशेष अभिचार (हिंसा) कहा गया है। अगर पुरुष परस्त्रीगमन करता है अथवा स्त्री परपुरुषगमन करती है तो माँ-बाप, भाई बहन आदिको तथा ससुरालमें पति, सास-ससुर, देवर आदिको महान् दुःख होता है। इस प्रकार दो परिवारोंको दुःख देना पाप है और निषिद्ध भोग भोगकर शास्त्र, धर्म, समाज, कुल आदिकी मर्यादाका नाश करना भी पाप है। ये दोनों पाप एक साथ बननेसे परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन करना विशेष

---

* वीर्यकी एक बूँदमें हजारों जीव होते हैं। स्त्री-संगसे जो वीर्य नष्ट होता है, उसमेंसे जो जीव गर्भाशयमें रजके साथ चिपक जाता है, वही गर्भ बनता है। शेष सब जीव मर जाते हैं, जिनकी हिंसाका पाप लगता है हाँ, केवल सन्तानोत्पत्तिके उद्देश्यसे ऋतुकालमें स्त्री संग करनेसे पाप नहीं लगता (पाप होता तो है, पर लगता नहीं); क्योंकि यह शास्त्रकी, धर्मकी आज्ञाके अनुसार है—'स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्' (गीता १८। ४७); 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि' (गीता ७। ११)। परंतु केवल भोगेच्छासे स्त्रीका संग करनेसे उस हिंसाका पाप लगता ही है। इसलिये कहा है—

एक बार भग भोग ते, जीव हतै नौ लाख।
जन मनोर नारी तजी, सुन गोरख की साख॥

अभिचार है, महापाप है। एक बुद्धिमान् सज्जनने अपना अनुभव बताया था कि परस्त्रीगमन करनेसे हृदयका आस्तिकभाव नष्ट हो जाता है और नास्तिकभाव आ जाता है, जो कि महान् अनर्थका मूल है।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि कोई भी क्यों न हों, सभीको ऐसे महापापोंका त्याग करना चाहिये। मनुष्य-शरीर मिला है तो कम-से-कम महापापोंसे तो बचना ही चाहिये; जिससे आगे दुर्गति न हो, भूत-प्रेत आदि योनियोंकी प्राप्ति न हो।

गर्भपात महापापसे दुगुना पाप है

जैसे ब्रह्महत्या महापाप है, ऐसे ही गर्भपात भी महापाप है। शास्त्रमें तो गर्भपातको ब्रह्महत्यासे भी दुगुना पाप बताया गया है—

यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते॥

(पाराशरस्मृति ४। २०)

'ब्रह्महत्यासे जो पाप लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात करनेसे लगता है। इस गर्भपातरूपी महापापका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, इसमें तो उस स्त्रीका त्याग कर देनेका ही विधान है।'

भगवान् विशेष कृपा करके जीवको मनुष्य शरीर देते हैं, पर नसबन्दी, आपरेशन, गर्भपात, लूप, गर्भनिरोधक दवाओं आदिके द्वारा उस जीवको मनुष्य-शरीरमें न आने देना, उस परवश जीवको जन्म ही न लेने देना, जन्मसे पहले ही उसको नष्ट कर देना बड़ा भारी पाप है। उसने कोई अपराध भी नहीं किया, फिर भी उस निर्बल जीवकी हत्या कर देना उसके साथ कितना बड़ा अन्याय है। वह जीव मनुष्य-शरीरमें आकर न जाने क्या-क्या अच्छे काम करता, समाजकी सेवा करता, अपना उद्धार करता, पर जन्म लेनेसे पहले ही उसकी हत्या कर देना घोर अन्याय है, बड़ा भारी

पाप है। अपना उद्धार, कल्याण न करना भी दोष, पाप है, फिर दूसरोंको भी उद्धारका मौका प्राप्त न होने देना कितना बड़ा पाप है! ऐसा महापाप करनेवाले स्त्री-पुरुषको अगले जन्मोंमें कोई सन्तान नहीं होगी। वे सन्तानके बिना जन्म-जन्मान्तरतक रोते रहेंगे।

यह प्रत्यक्ष बात है कि जो मालिक अच्छे नौकरोंका तिरस्कार करता है, उसको फिर अच्छे नौकर नहीं मिलेंगे; और जो नौकर अच्छे मालिकका तिरस्कार करता है, उसको फिर अच्छा मालिक नहीं मिलेगा। अच्छे सन्त-महात्माओंका संग पाकर जो अपना उद्धार नहीं करता, उसको फिर वैसा संग नहीं मिलेगा। जिनसे लाभ हुआ है, ऐसे अच्छे सन्तोंका जो त्याग करता है, उनकी निन्दा, तिरस्कार करता है, उसको फिर वैसे सन्त नहीं मिलेंगे। जैसे माता-पिता प्रसन्न होकर बालकको मिठाई देते हैं, पर बालक उस मिठाईको न खाकर गन्दी नालीमें फेंक देता है तो फिर माता-पिता उसको मिठाई नहीं देते। ऐसे ही भगवान् विशेष कृपा करके मनुष्य-शरीर देते हैं, पर मनुष्य उस शरीरसे पाप करता है, उस शरीरका दुरुपयोग करता है तो फिर उसको मनुष्य शरीर नहीं मिलेगा। माता-पिता तो फिर भी बालकको मिठाई दे देते हैं; क्योंकि बालक नासमझ होता है, पर जो समझपूर्वक, जानकर पाप करता है, उसको भगवान् फिर मनुष्य-शरीर नहीं देंगे। इसी तरह जो गर्भपात करते हैं, उनको फिर अगले जन्मोंमें सन्तान नहीं होगी।

ब्रह्मवैवर्तपुराण (प्रकृतिखण्ड, अध्याय २) में आता है कि सृष्टिके आरम्भमें भगवान् श्रीकृष्णकी चिन्मयी शक्ति मूल प्रकृति (श्रीराधा)ने अपने गर्भको ब्रह्माण्ड-गोलकके अथाह जलमें फेंक दिया। यह देखकर भगवान्‌ने उसको शाप दे दिया कि 'आजसे तेरी कोई सन्तान नहीं होगी। इतना ही नहीं, तेरे अंशसे जो-जो

दिव्य स्त्रियाँ उत्पन्न होंगी, उनकी भी कोई सन्तान नहीं होगी'*! इसके बाद मूल प्रकृति-देवीकी जीभके अग्रभागसे सरस्वती प्रकट हुई। फिर कुछ समय बीतनेपर वह मूल प्रकृति दो रूपोंमें प्रकट हो गयी। आधे बायें अंगसे वह 'लक्ष्मी' और आधे दायें अंगसे वह 'राधा' हो गयी। भगवान् श्रीकृष्ण भी उस समय दो रूपोंमें प्रकट हो गये। आधे बायें अंगसे वे 'चतुर्भुज विष्णु' और आधे दायें अंगसे वे 'द्विभुज कृष्ण' हो गये†। तब भगवान् श्रीकृष्णने लक्ष्मी और सरस्वती—दोनों देवियोंको विष्णुकी सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा दी। मूल प्रकृतिसे प्रकट होनेके कारण लक्ष्मी और सरस्वतीकी भी कोई सन्तान नहीं हुई‡। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोप प्रकट हुए और श्रीराधाके रोमकूपोंसे असंख्य गोप-कन्याएँ प्रकट हुईं। भगवान्‌के शापके कारण इन गोप-कन्याओंकी भी कोई सन्तान नहीं

---

* दृष्ट्वा डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता।
उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह।
शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम्॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे।
भवत्वमनपत्यापि चाद्यप्रभृतिनिश्चितम्॥
या यास्त्वदंशरूपा च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः।
अनपत्याश्च ताः सर्वास्तत्समा नित्ययौवनाः॥
(प्रकृति० २।५०—५३)

† अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपा बभूव ह।
वामार्द्धाङ्गा च कमला दक्षिणार्द्धा च राधिका॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह।
दक्षिणार्द्धश्च द्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुजः॥
(प्रकृति० २।५६-५७)

‡ अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्भवाः।
(प्रकृति० २।६०)

हुई*। इस कथासे यह सिद्ध होता है कि जो स्त्री गर्भ गिराती है, वह अगले जन्मोंमें सन्तानका सुख नहीं देख सकेगी!

प्रश्न—ऐसा देखनेमें आता है कि जिन्होंने गर्भपात किया है, वे स्त्रियाँ भी पुनः गर्भवती होती हैं और उनकी सन्तान भी होती है। अतः यह कैसे मानें कि गर्भपात करनेवालेकी फिर सन्तान नहीं होगी?

उत्तर—इस जन्मका तो पहले ही प्रारब्ध बन चुका है; अतः उस प्रारब्धके अनुसार उनकी सन्तान हो सकती है। परंतु अगले जन्ममें (नया प्रारब्ध बननेपर) उनकी सन्तान नहीं होगी। इस जन्ममें किये गये गर्भपातरूप महापापका फल उनको अगले जन्मोंमें भोगना ही पड़ेगा।

प्रश्न—गर्भस्राव, गर्भपात और भ्रूण-हत्या—इन तीनोंमें क्या अन्तर है?

उत्तर—गर्भमें जीवका शरीर बनना शुरू होनेसे पहले ही रज-वीर्य गिर जाय तो उसको 'गर्भस्राव' कहते हैं। जब गर्भमें शरीर बनना शुरू हो जाय, तब उसको गिरा देना, 'गर्भपात' कहलाता है। जब गर्भमें स्थित जीवके हाथ, पाँव, मस्तक आदि अंग निकल आते हैं और यह बच्चा है या बच्ची—इसका भेद स्पष्ट होने लगता है, तब उसको गिरा देना 'भ्रूण-हत्या' कहलाती है। गर्भस्राव, गर्भपात और भ्रूण-हत्या—इन तीनोंको किसी भी तरहसे करनेपर महापाप लगता है। हाँ, अपने-आप गर्भ गिर जाय तो उसका पाप नहीं लगता। जैसे, संसारमें बहुत-से जीव

---

* राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः।
राधातुल्याश्च सर्वास्ता राधातुल्याः प्रियवदाः॥
रत्नभूषणभूषाढ्या शश्वत् सुस्थिरयौवनाः।
अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन सन्ततम्॥
(प्रकृति० २।६४-६५)

अपने आप मर जाते हैं, पर उसका पाप हमें नहीं लगता; क्योंकि हमने उनको मारा भी नहीं और मारनेकी इच्छा भी नहीं की।

प्रश्न—गर्भमें जीव (प्राण) तो रहता नहीं, बादमें आता है, फिर गर्भपात पाप कैसे ?

उत्तर—पुरुषके वीर्यकी एक बूँदमें हजारों जीव होते हैं। उनमेंसे जो जीव रजके साथ चिपक जाता है, गर्भाशयमें रह जाता है, वही बढ़कर गर्भ बनता है। जीवके बिना न तो वीर्य रजके साथ चिपक सकता है और न गर्भ बढ़ ही सकता है। प्राण शक्तिके बिना गर्भ बढ़ ही नहीं सकता। जीवमें प्राणशक्ति पहले सूक्ष्म होती है, पर गर्भमें आते ही प्राणशक्ति स्थूल हो जाती है और गर्भ बढ़ने लगता है. गर्भ बढ़नेपर जब प्राणशक्ति विशेषतासे प्रतीत होती है और गर्भमें हलचल होने लगती है, तब लोग कह देते हैं कि अब गर्भमें जीव आ गया।

प्रश्न—किसीका गर्भ अपने-आप गिर जाय तो ?

उत्तर—यह एक रोग है और इसका इलाज करना चाहिये। एक स्त्रीके पाँच-छः गर्भ गिर गये। एक सन्तने उसके परिवारवालोंको बताया कि उसके गर्भाशयमें गरमी बहुत है, जिससे गर्भ झुलस जाता है और गिर जाता है; अतः इसके लिये एक उपाय करो। जब उसके गर्भ रह जाय, तब वह इस विधिसे गायका दूध पिये। एक बर्तनपर दूध छाननेवाला कपड़ा डाल दें और कपड़ेपर महीन पिसी मिश्री रख दें। फिर उसपर गायका दूध दुहें, जिससे वह मिश्री दूधमें मिलकर बर्तनमें चली जायगी। यह धारोष्ण दूध वह स्त्री तत्काल गायके सामने ही बैठकर प्रतिदिन प्रातः खाली पेट एक महीनेतक पिये। सन्तके कहे अनुसार उस स्त्रीने दूध पिया तो उसका गर्भ गिरा नहीं और उसकी संतान हो गयी। वह सन्तान अब भी जीवित है।

इस रोगको मिटानेकी कई ओषधियाँ हैं, जिनको आयुर्वेदमें

निष्णात अनुभवी वैद्यसे लेना चाहिये।

प्रश्न—किसी रोगके कारण गर्भपात कराना अनिवार्य हो जाय तो क्या करें?

उत्तर—गर्भपातका पाप तो लगेगा ही। स्त्रीके बचावके लिये लोग गर्भपात करा देते हैं, पर ऐसा नहीं करना चाहिये, प्रत्युत इलाज करना चाहिये। जो होनेवाला है, वह तो होगा ही। स्त्री मरनेवाली होगी तो गर्भ गिरानेपर भी वह मर जायगी। यदि उसकी आयु शेष होगी तो गर्भ न गिरानेपर भी वह नहीं मरेगी। मृत्यु तो समय आनेपर ही होती है, निमित्त चाहे कुछ भी बन जाय। अत: गर्भपात कभी नहीं कराना चाहिये।

प्रश्न—कुँवारी अवस्थामें गर्भ रह जाय तो उसको गिराना चाहिये या नहीं?

उत्तर—जिसके संगसे गर्भ रह जाय, उसके साथ विवाह करा देना चाहिये। अगर विवाह न करा सकें तो भी उस गर्भको गिराना नहीं चाहिये। उसका पालन करना चाहिये और थोड़ा बड़ा होनेपर उस बच्चेको अनाथालयमें भरती करा देना चाहिये अथवा कोई गोद लेना चाहे तो उसको दे देना चाहिये।

यदि कोई कन्याके साथ जबर्दस्ती (बलात्कार) करे तो जबर्दस्ती करनेवालेको बड़ा भारी पाप लगेगा। यदि कन्याने उसमें (संगका) सुख लिया है तो उतने अंशमें उसको भी पाप लगेगा; क्योंकि सभी पाप भोगेच्छासे ही होते हैं। सर्वथा भोगेच्छा न होनेपर पाप नहीं लगता।

यदि कुँवारी कन्याके गर्भ रह जाय तो उसके माता-पिताको भी असावधानीके कारण उसका पाप लगता है। अत: माता पिताको चाहिये कि वे शुरूसे ही बड़ी सावधानीके साथ अपनी कन्याकी सुरक्षा रखें, उसको स्वतन्त्रता न दें।

प्रश्न—लोगोंको पता लगेगा तो उस कन्याकी बदनामी होगी

तथा उसके साथ कोई विवाह भी नहीं करेगा, तो फिर वह क्या करे?

उत्तर—पाप किया है तो बदनामी सहनी ही पड़ेगी। गर्भ गिरा देना, आत्महत्या कर लेना और घरसे भाग जाना—इन तीन हत्याओं (पापों) से बचनेके लिये बदनामी सह लेना अच्छा है। उस कन्याके साथ कोई विवाह करना स्वीकार न करे तो वह घर बैठे ही भजन-स्मरण करे। इससे उसके पापका प्रायश्चित्त भी हो जायगा।

प्रश्न—यदि कोई विवाहिता स्त्रीसे बलात्कार करे और गर्भ रह जाय तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—जहाँतक बने, स्त्रीके लिये चुप रहना ही बढ़िया है। पतिको पता लग जाय तो उसको भी चुप रहना चाहिये। दोनोंके चुप रहनेमें ही फायदा है। वास्तवमें पहलेसे ही सावधान रहना चाहिये, जिससे ऐसी घटना हो ही नहीं। गर्भ गिरानेमें हमारी सम्मति नहीं है, क्योंकि गर्भकी हत्या महापाप है।

प्रश्न—नसबन्दी, आपरेशन करवानेसे क्या हानि है?

उत्तर—यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि जिन लोगोंने नसबन्दी करवायी है, उनमेंसे बहुतोंके शरीर और हृदय कमजोर हो गये हैं। उनके शरीरमें कई रोग पैदा हुए हैं, हो रहे हैं और होते रहेंगे। पशुओंमें भी हम देखते हैं कि जो बछड़े बैल बना दिये जाते हैं, उनका पुरुषत्व नष्ट होनेसे उनके मांसमें वह शक्ति नहीं रहती, जो शक्ति बैल न बनाये हुए बछड़ोंके मांसमें रहती है। अतः बैल बनाये हुए बछड़ोंका मांस ईराक, ईरान आदि देशोंमें सस्ता बिकता है और बिना बैल बनाये हुए बछड़ोंका मांस महँगा बिकता है—ऐसा हमने सुना है। इसलिये नसबन्दीके द्वारा पुरुषत्वका अवरोध करनेसे, नष्ट करनेसे शारीरिक शक्ति भी नष्ट होती है और उत्साह, निर्भयता आदि मानसिक शक्ति भी नष्ट होती है।

जो नसबन्दीके द्वारा अपना पुरुषत्व नष्ट कर देते हैं, वे नपुंसक (हिजड़े) हैं। उनके द्वारा पितरोंको पिण्ड-पानी नहीं मिलता*। ऐसे पुरुषको देखना भी अशुभ माना गया है। यात्राके समय ऐसे व्यक्तिका दीखना अपशकुन है।

जिन माताओंने नसबन्दी आपरेशन करवाया है, उनमेंसे बहुतोंको लाल एवं सफेद प्रदर हो गया है, जिसका कोई इलाज नहीं है। राजस्थानमें ही नसबन्दी आपरेशनके कारण अबतक सैकड़ों स्त्रियाँ मर चुकी हैं और कइयोंको ऐसे रोग हो गये हैं कि डाक्टरोंने जवाब दे दिया है। यह बात समाचारपत्रोंमें भी आयी है। आपरेशन करवानेसे स्त्रियोंके शरीरमें कमजोरी आ जाती है; उठते-बैठते समय आँखोंके आगे अँधेरा आ जाता है, छाती और पीठमें दर्द होने लगता है और काम करनेकी हिम्मत नहीं होती। ऐसा हमने डाक्टरोंसे सुना है।

जो स्त्रियाँ नसबन्दी आपरेशन करा लेती हैं, उनका स्त्रीत्व अर्थात् गर्भ-धारण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसी स्त्रियोंका दर्शन भी अशुभ है, अपशकुन है। भगवान्‌की दी हुई शक्तिका नाश करनेका किसीको भी अधिकार नहीं है। उसका नाश करना अनधिकार चेष्टा है, अपराध है। जिन्होंने आपरेशनके द्वारा अपना स्त्रीत्व नष्ट किया है, वे तो पापकी भागिनी हैं ही, पर जो दूसरोंको आपरेशन करवानेकी प्रेरणा करती हैं, आग्रह करती हैं, वे नया पाप करती हैं। जैसे गीताके अध्ययनका बड़ा माहात्म्य है, पर उससे भी अधिक गीताके प्रचारका माहात्म्य है (गीता १८।६९), ऐसे ही जो दूसरोंमें आपरेशनका प्रचार करती हैं, वे बड़ा भारी पाप करती हैं और गोघातकोंकी संख्या बढ़ानेमें सहायक होनेसे गोहत्याके पापमें भागीदार होती हैं। भोली बहनोंको इस बातका पता नहीं है, इसलिये वे अनजानमें बड़ा भारी अपराध, पाप कर

* अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम् (कात्यायनश्रौतसूत्रं १।१.५)

बैठती हैं। उन्हें इस पापसे बचना चाहिये।

जो कोई भी किसी प्रकारका अपराध करता है, उसकी प्राण-शक्तिका जल्दी नाश हो जाता है और उसकी मृत्यु जल्दी हो जाती है। अपराध, पाप करनेपर अथवा उसको करनेकी मनमें आनेपर श्वास तेजीसे चलने लगते हैं, प्राण क्षुब्ध हो जाता है—यह प्रत्यक्ष बात है। कोई भी अनुभव करके देख सकता है।

नसबन्दी आपरेशन कराना व्यभिचारको खुला अवसर देना है, जो बड़ा भारी पाप है। पशुओंकी बलि देने, वध करनेको 'अभिचार' कहते हैं। उससे भी जो विशेष अभिचार होता है, उसको 'व्यभिचार' कहते हैं। इससे मनुष्यकी धार्मिक, पारमार्थिक रुचि (भावना) नष्ट हो जाती है और उसका महान् पतन हो जाता है।

मनुष्य-शरीर केवल परमात्मप्राप्तिके लिये ही मिला है, पर उसको परमात्माकी तरफ न लगाकर केवल भोग भोगनेमें ही लगाना और इतना ही नहीं, केवल भोग भोगनेके लिये बड़े-बड़े पाप करना, गर्भपात करना, नसबन्दी करना, आपरेशन करना कितने भारी अनर्थकी बात है! गर्भपात, नसबन्दी आदि करनेसे सिवाय भोग भोगनेके और क्या सिद्ध होता है? नसबन्दीसे क्या किसीको कोई धार्मिक-पारमार्थिक लाभ हुआ है, होगा और हो सकता है? नसबन्दी करनेसे केवल भोगपरायणता ही बढ़ रही है। जितनी भोगपरायणता आज मनुष्योंमें हो रही है, उतनी पशुओंमें भी नहीं है। यदि आप सन्तान नहीं चाहते तो संयम रखो, जिससे आपके शरीरमें बल रहेगा, उत्साह रहेगा और आपमें धर्म-परायणता, ईश्वर-परायणता आयेगी। आपका मनुष्य-जन्म सफल हो जायगा। सन्तोंने कहा है—

के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि जितानि यानि॥

(प्रश्नोत्तरी ४)

अर्थात् मनुष्य इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है तो वे इन्द्रियाँ उसकी शत्रु बन जाती हैं, जिससे उसके लोक-परलोक बिगड़ जाते हैं। परंतु वह इन्द्रियोंको जीत लेता है तो वे इन्द्रियाँ उसकी मित्र बन जाती हैं, जिससे उसके लोक परलोक सुधर जाते हैं। इसलिये गीताने कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(६। ५)

'अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे, क्योंकि आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

प्रश्न—गर्भपात करनेसे क्या हानि है?

उत्तर—गर्भपातसे तो हानि-ही-हानि है। कृत्रिम गर्भस्राव, गर्भपात करानेसे स्त्रीका शरीर खराब हो जाता है, कमजोर हो जाता है। जवानी अवस्थामें भले ही कमजोरीका पता न लगे, पर थोड़ी अवस्था ढलनेपर इसका पता लगने लगेगा। जबतक शरीरमें खून बनता है, तबतक कमजोरीका पूरा पता नहीं लगता, पर खून बनना कम होनेपर कमजोरीका पता लगता ही है। गर्भपातसे बहुतोंको प्रदर हो जाता है। इसके सिवाय गर्भपातसे खून गिरनेका एक रास्ता खुल जाता है।

बच्चा पैदा होनेसे स्त्रीका शरीर खराब नहीं होता; क्योंकि बच्चा पैदा होना प्राकृत है और वह समयपर होता है। तात्पर्य है कि प्राकृत चीजोंसे स्वाभाविक ही खराबी पैदा नहीं होती, खराबी तो कृत्रिम चीजोंसे ही होती है।

प्रश्न—एक-दो बार सन्तान होनेसे स्त्री माँ बन ही गयी, अब वह नसबन्दी आपरेशन करवा ले तो क्या हर्ज है?

उत्तर—वह माँ तो पहले थी, अब तो नसबन्दी आपरेशन करवा लेनेपर उसकी 'स्त्री' संज्ञा ही नहीं रही। कारण कि

शुक्र-शोणित मिलकर जिसके उदरमें गर्भका रूप धारण करते हैं, उसका नाम स्त्री है*। जो गर्भ धारण न कर सके, उसका नाम स्त्री नहीं है; और जो गर्भ-स्थापन न कर सके, उसका नाम पुरुष नहीं है। आपरेशनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति करनेकी शक्ति नष्ट करनेपर पुरुषका नाम तो हिजड़ा होगा, पर स्त्रीका क्या नाम होगा—इसका हमें पता नहीं।

परिवार-नियोजन नारी-जातिका घोर अपमान है; क्योंकि इससे नारी-जाति केवल भोग्या बनकर रह जाती है। कोई आदमी वेश्याके पास जाता है तो क्या वह सन्तान-प्राप्तिके लिये जाता है? अगर कोई आदमी स्त्रीसे सन्तान नहीं चाहता, प्रत्युत केवल भोग करता है तो उसने स्त्रीको वेश्या ही तो बनाया! यह क्या नारी जातिका सम्मान है? नारी-जातिका सम्मान तो माँ बननेसे ही है, भोग्या बननेसे कभी नहीं। अगर स्त्री आपरेशन आदिके द्वारा अपनी मातृशक्तिको नष्ट कर देती है तो वह पैरकी जूतीकी तरह केवल भोग्य वस्तु रह जाती है। यह नारी-जातिका कितना बड़ा अपमान है, निरादर है!

प्रश्न—जिसकी स्वाभाविक ही सन्तान नहीं होती, उसको दोष लगता है या नहीं?

उत्तर—किसीकी स्वाभाविक ही सन्तान नहीं होती तो यह उसका दोष नहीं है। जो कृत्रिम उपायोंसे मातृशक्तिका, सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्तिका नाश करती है, उसीको दोष पाप लगता है।

प्रश्न—जो स्त्रियाँ गर्भाधानके पहले ही गोलियाँ खा लेती हैं, जिससे गर्भ रहे ही नहीं, उनको भी पाप लगता है क्या?

उत्तर—जीव मनुष्य-शरीरमें आकर परमात्माको प्राप्त कर

*'स्त्यैष्ट्यै शब्दसंघातयोः'। स्त्यायतः—सगते भवतः अस्यां शुक्रशोणिते इति स्त्री।
(सिद्धान्तकौमुदी, बालमनोरमा)

सकता है; अपना और दूसरोंका भी उद्धार कर सकता है; परंतु अपनी भोगेच्छाके वशीभूत होकर उस जीवको ऐसा मौका न आने देना पाप है ही गीतामें भी भगवान्‌ने कामना—भोगेच्छा, सुखेच्छाको ही सम्पूर्ण पापोंका हेतु बताया है (३। ३७)। यह भोगेच्छा ही सम्पूर्ण पापोंकी जड़ है। परिवार-नियोजनका मतलब केवल भोगेच्छा ही है। अतः गोलियाँ खाकर सन्तति निरोध करना पाप ही है।

प्रश्न—यदि कोई स्त्री अपने पतिको बताये बिना गर्भपात करवा ले तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—इसके लिये शास्त्रने आज्ञा दी है कि उस स्त्रीका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये—'**तस्यास्त्यागो विधीयते**' (पाराशरस्मृति ४। २०)।

गर्भपात करना महान् पाप है और पतिसे छिपाव करना अपराध है। छिपकर किये गये पापका दण्ड बहुत भयंकर होता है। अगर सन्तानकी इच्छा न हो तो संयम रखना चाहिये। संयम रखना पाप, अन्याय नहीं है, प्रत्युत बड़ा भारी पुण्य है, बड़ा त्याग है, बड़ी तपस्या है।

प्रश्न—वर्तमान सरकार गर्भपात, नसबन्दी आदिको पाप नहीं मानती, प्रत्युत अच्छा कार्य मानती है, तो क्या ऐसा करनेवालोंको पाप नहीं लगेगा?

उत्तर—पाप तो लगेगा ही, मानो चाहे मत मानो। जितने भी पाप होते हैं, वे किसीके मानने और न माननेपर निर्भर नहीं करते। पापके विषयमें अर्थात् अमुक कार्य पाप है—इसमें वेद, शास्त्र और सन्त वचन ही प्रमाण हैं।

पाप-कर्म करनेसे पाप लगता ही है और उसका फल भी भोगना पड़ता है। हमने देखा है कि जिस पशुकी बलि चढ़ती है, उसको पीछेकी टाँगोंसे जिस वृक्षमें लटका देते हैं, वह वृक्ष भी

उस पापके कारण सूख जाता है। जो कसाई पैसे लेकर पशुओंको काटते हैं, उनके हाथ बादमें काम नहीं करते; अतः वे हाथमें छुरी बाँधकर पशुओंको काटनेका काम करते हैं। भेड़ियेके सात-सात बच्चे होते हैं और हिरनके एक-दो बच्चे ही होते हैं, फिर भी झुण्ड हिरनोंका ही होता है, भेड़ियोंका नहीं। तात्पर्य है कि हिंसा आदि पाप करनेवालोंकी परम्परा ज्यादा समय नहीं चलती।

एक सन्तसे किसीने पूछा—'जिन शास्त्रोंमें, सम्प्रदायोंमें बलि देनेकी, कुरबानी करनेकी आज्ञा दी गयी है, उस आज्ञाका पालन करनेवाले व्यक्तियोंको पाप नहीं लगता होगा; क्योंकि वे अपने ही शास्त्र, सम्प्रदायकी आज्ञाका पालन करते हैं।' उन्होंने उत्तर दिया—'जो बलि देते हैं, कुरबानी करते हैं, वे भी अगर छः महीने हृदयसे भगवान्‌के नामका जप करें तो फिर वे बलि दे ही नहीं सकते, कुरबानी कर ही नहीं सकते।' शुद्ध अन्तःकरणवाला व्यक्ति शास्त्रकी आज्ञा होनेपर भी पाप नहीं कर सकता। अतः जिन शास्त्रोंमें बलि आदिकी आज्ञा दी गयी है, उस आज्ञाको नहीं मानना चाहिये।

एक धर्मशास्त्र होता है और एक अर्थशास्त्र। धर्मशास्त्र मनुष्यको कर्तव्यका ज्ञान कराता है, जिससे मनुष्यके लोक-परलोक सुधरते हैं। अर्थशास्त्र दृष्ट फलका वर्णन करता है। जो मनुष्य कामनाके वशीभूत होकर दृष्ट फल (धन-सम्पत्ति, पुत्र, स्वर्ग आदिकी प्राप्ति)-के लिये अर्थशास्त्रकी आज्ञा मानकर पाप करते हैं, वे पापके भागी होते हैं। कारण कि अर्थशास्त्रमें कामना, सकामभावकी मुख्यता होती है और कामना सब पापोंकी जड़ है (गीता ३। ३७)। जो सौ यज्ञ करके इन्द्र (शतक्रतु) बनता है, उसके द्वारा भी शास्त्रके अनुसार (वैध) हिंसा होती है। उस हिंसाके पापका फल भोगना ही पड़ता है। इसीलिये इन्द्रपर आफत (प्रतिकूल परिस्थिति) आती है, उसकी हार होती है, वह

डरके मारे भागता-फिरता है, छिपता है, उसके हृदयमें जलन होती है। अतः हिंसाका फल मिलता ही है, कोई हिंसा माने, चाहे न माने। तात्पर्य है कि जहाँ धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रके वचन हों, वहाँ धर्मशास्त्रके ही वचन मानने चाहिये; क्योंकि अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र श्रेष्ठ है, बलवान् है*।

आज सरकार गर्भ गिरानेको पाप नहीं मानती, पर न माननेसे पाप नहीं लगेगा—यह बात नहीं है। पाप तो लगेगा ही, कोई माने चाहे न माने। जैसे पहले राजालोग निषिद्ध काम करनेके लिये प्रजाको आज्ञा देते थे, प्रेरणा करते थे तो उसका पाप राजा और प्रजा दोनोंको लगता था (उदाहरणार्थ, राजा वेनने स्वयं भी निषिद्ध काम किये और प्रजासे भी करवाये), ऐसे ही आज सरकार गर्भपात आदि निषिद्ध काम करनेकी प्रेरणा करती है तो सरकारको भी पाप लगेगा और जनता (निषिद्ध काम करनेवाले) को भी।

प्रश्न—रामचरितमानसमें आता है—'***समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥***' (बाल० ६९।४)। अतः जिनको राज्य मिला है, बड़ा पद मिला है, वे (राजा, सरकार) समर्थ हैं, तो फिर उनको पाप कैसे लगेगा?

उत्तर—वे समर्थ नहीं हैं। समर्थ वे हैं, जिनमें दूसरोंके दोषोंको नष्ट करनेकी शक्ति है। जैसे—सूर्य गन्दगीका शोषण कर लेता है; अपवित्रको पवित्र, अशुद्धको शुद्ध बना देता है; सबके जलीय भागको खींच लेता है; समुद्रके खारे जलको खींचकर मीठा जल बना देता है। परंतु ऐसा करनेपर भी सूर्य खुद कभी अशुद्ध, अपवित्र नहीं होता। अग्नि सब गन्दगीको जला देती है, सबका भक्षण कर जाती है, सबको शुद्ध कर देती है, पर वह

---

* स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः॥

अशुद्ध नहीं होती, उसको दोष नहीं लगता। गंगाजी गन्दे जलको पवित्र कर देती हैं, पापोंका नाश कर देती हैं, पर उनको दोष नहीं लगता। तात्पर्य है कि अशुद्धको शुद्ध बना देना, उसके दोषोंको नष्ट कर देना और स्वयं ज्यों-का त्यों ही रहना—यह समर्थपना है। जिसको राज्य, वैभव मिल गया, वे समर्थ हैं—यह बात है ही नहीं।

सांसारिक पद, अधिकार, वैभव आदि मिलनेसे मनुष्य समर्थ नहीं होता; क्योंकि उसकी सामर्थ्य पद, अधिकार आदिके अधीन है। वह तो पद, अधिकार आदिका गुलाम है, दास है, पराधीन है; अतः वह खुद समर्थ कैसे हुआ? तात्पर्य है कि जो मिली हुई चीजसे अपनेको समर्थ मानता है, वह वास्तवमें असमर्थ ही है, क्योंकि उसमें जो सामर्थ्य दीखती है, वह उस चीजकी है, खुदकी नहीं है। जो वास्तवमें समर्थ होते हैं, उनकी सामर्थ्य किसीके अधीन नहीं होती; जैसे—सूर्य, अग्नि और गंगाजीकी सामर्थ्य किसीके अधीन नहीं है, प्रत्युत स्वयंकी है। अतः राज्यके, पदके मदमें आकर जो पाप करते करवाते हैं, वे अपनी सामर्थ्यका महान् दुरुपयोग करते हैं, जिसका दण्ड उनको भोगना ही पड़ेगा। उनकी सामर्थ्य पापोंको दूर करनेवाली न होकर पाप करानेवाली है। इसलिये वास्तवमें जो समर्थ नहीं है, उस सरकारको समर्थ मानकर उसकी प्रेरणासे मनुष्यको कभी पाप नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—सरकारका आदेश होनेसे यदि डॉक्टरलोग गर्भपात, नसबन्दी, आपरेशन करते हैं तो क्या उन्हें महापाप लगेगा?

उत्तर—उनको तो अवश्य ही महापाप लगेगा। लोभ पापका बाप है ही। थोड़े से लोभके लिये वे कितने जीवोंकी हत्या कर देते हैं! ऐसा घृणित कार्य करके, महापाप करके कमाये हुए पैसोंका अन्न खानेसे उनकी बड़ी दुर्दशा होगी।

शास्त्रमें आया है कि यदि अन्नपर गर्भपात करनेवालीकी दृष्टि भी पड़ जाय तो वह अन्न अभक्ष्य (न खानेयोग्य) हो जाता है—

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया।
पतत्रिणाऽवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च॥

(मनुस्मृति ४। २०८)

'गर्भहत्या करनेवालेका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ और कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अन्न न खाये।'

नौकरीमें अपना समय देकर, काम करके पैसे लिये जाते हैं, अपना धर्म, कर्तव्य, सत्कर्म देकर पैसे नहीं लिये जाते। पाप, अन्याय, हत्या, हिंसा आदि करके पैसे लेना तो कोरा पाप है। अतः यदि कोई मालिक पाप, अन्याय करनेके लिये कहे तो नौकरको चाहिये कि वह मालिकसे नम्रतापूर्वक कह दे कि 'मैं आपके काममें घण्टा-दो-घण्टा समय अधिक दे सकता हूँ, पर अपने धर्मका नाश करके पाप, हिंसा करनेमें मैं बाध्य नहीं हूँ; आप नौकरीपर रखें, चाहे न रखें, आपकी मरजी।'

एक सज्जनने गर्भपात, नसबन्दी कार्य नहीं किया तो उसको नौकरीसे निकाल दिया गया। उसने मुकदमा किया और उसमें वह जीत गया। अतः उसको पुनः नौकरीपर रखना पड़ा। अगर सरकारका ऐसा कानून है तो वह ईसाई, मुसलमान, पारसी आदि सबके लिये होना चाहिये, केवल हिन्दुओंके लिये ही नहीं। किसी एक जातिपर, एक वर्णसमुदायपर ज्यादती करना, उसको पाप करनेके लिये बाध्य करना और पाप करनेका कानून बनाना सरकारके लिये उचित नहीं है।

प्रश्न—किसीने भूलसे, अनजानमें नसबन्दी आपरेशन करवा लिया तो अब वह क्या करे?

उत्तर—डाक्टरोंका कहना है कि आपरेशनमें केवल नस ही काटी गयी हो तो वह पुनः जोड़ी जा सकती है; परंतु जिसका गर्भाशय ही निकाल दिया गया हो, उसका कोई इलाज नहीं है।

अतः केवल नसबन्दी ही की गयी हो तो उसको फिर ठीक करवा लेना चाहिये। ऐसा काम हुआ भी है और जिन्होंने ऐसा किया है, उनकी फिर सन्तान भी हुई है।

इस प्रकार नसबन्दी ठीक करवा ले, अपना पुरुषत्व और स्त्रीत्व ठीक कर ले और पहले किये हुए अपराधका पश्चात्ताप करे तो उसके हाथसे पितरोंको पिण्ड-पानी मिल सकता है। अगर ब्रह्मचर्यका पालन करे तो तेज बढ़ेगा, ओज-शक्ति बढ़ेगी, उत्साह बढ़ेगा।

प्रश्न—किसीने अनजानमें गर्भपात करवा लिया तो अब वह उसका क्या प्रायश्चित्त करे?

उत्तर—उसको चाहिये कि वह एक वर्षतक प्रतिदिन एक लाख रामनामका जप करे। परंतु जो जानकर गर्भपात करती है, वह अगर इस प्रकार नामजप करे तो भी उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं होगा। उसको तो पापका दण्ड भोगना ही पड़ेगा। कारण कि जो नाम महापापोंका नाश करनेवाला है, उस नामके सहारे कोई पाप करता है तो नाम उसकी रक्षा नहीं करता। अतः उसके पाप नष्ट नहीं होते, प्रत्युत वज्रलेप हो जाते हैं। पहले तो बिना नामके वह पाप करनेसे डरता था, पर अब वह नामके सहारे पाप करनेसे नहीं डरता तो यह नामका महान् दुरुपयोग है, नामापराध है, जिसका दण्ड उसको भोगना ही पड़ेगा।

प्रश्न—परिवार-नियोजन नहीं करेंगे तो जनसंख्या बहुत बढ़ जायगी, जिससे लोगोंको अन्न नहीं मिलेगा, फिर लोग जीयेंगे कैसे?

उत्तर—यह प्रश्न सर्वथा ही अयुक्त है, युक्तियुक्त नहीं है. कारण कि जहाँ मनुष्य पैदा होते हैं, वहाँ अन्न भी पैदा होता है। भगवान्‌के यहाँ ऐसा अँधेरा नहीं है कि मनुष्य पैदा हों और अन्न पैदा न हो।

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिंता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

माँके स्तनोंमें दूध पहले पैदा होता है, बच्चा पीछे पैदा होता है। इसका क्या पता? जब बच्चा पैदा होता है, तब माताएँ स्तनोंमेंसे पुराना दूध निकालकर बच्चेको नया दूध पिलाती हैं। हम भी कहीं जाते हैं तो वहाँ व्यवस्था पहले होती है, हम पीछे पहुँचते हैं। ऐसा नहीं होता कि व्याख्यान पहले होगा, पण्डाल पीछे बनेगा। बारात ठहरनेकी जगह पहले तैयार की जाती है या बारात आनेके बाद? कोई उत्सव होता है तो उसकी व्यवस्था पहले होती है। ऐसा नहीं होता कि पहले उत्सव हो, फिर व्यवस्था हो। ऐसा देखा भी जाता है और वैज्ञानिकोंका भी कहना है कि जहाँ वृक्ष अधिक होते हैं, वहाँ वर्षा अधिक होती है। जहाँ वृक्ष नहीं होते, वहाँ वर्षा कम होती है। ऐसे ही मनुष्य अधिक होंगे तो अन्न भी अधिक पैदा होगा। अन्नमें कमी कैसे आयेगी? क्या मनुष्य वृक्षोंसे भी नीचे हैं?

प्रश्न—आज अन्न इतना महँगा क्यों हो गया है?

उत्तर—विचारपूर्वक देखें कि जबसे परिवार नियोजन होता गया, तबसे अन्न भी महँगा होता गया, कम पैदा होता गया। जब मनुष्योंकी संख्या कम होगी तो फिर अन्न अधिक क्यों पैदा होगा? तात्पर्य है कि परिवार नियोजनकी प्रथा चलनेसे ही यह दशा हुई है।

आज 'मांस खाओ, मछली खाओ, अण्डा खाओ'—ऐसा प्रचार किया जाता है, तो फिर वर्षा और खेती क्यों हो? कारण कि मांस खानेसे पशु नहीं रहेंगे तो उनके लिये घासकी जरूरत नहीं और मनुष्य मांस खायेंगे तो उनके लिये अन्नकी जरूरत नहीं, फिर निरर्थक घास और अन्न पैदा क्यों हों!

जब मनुष्य अधिक हों और वस्तुएँ कम हों, तब महँगाई होती है। वस्तुएँ तभी कम होती हैं, जब मनुष्य काम न करें, आलस्य प्रमाद करें। आज भी यही दशा है। लोग काम तो कम करते हैं

और खर्चा ज्यादा करते हैं, इसीलिये इतनी महँगाई हो रही है। काम कम करनेसे वस्तुएँ कम पैदा होंगी ही। अतः महँगाईका कारण जनसंख्याका अधिक होना नहीं है, प्रत्युत मनुष्योंमें अकर्मण्यता, आलस्य, प्रमाद आदि दोषोंका बढ़ना ही है। सरकारकी अव्यवस्था भी इसमें कारण है।

प्रश्न—हमें काम-धंधा नहीं मिलता तो हम क्या करें ?

उत्तर—काम-धंधा न मिलनेमें कारण है कि मनुष्य जिस क्षेत्र एवं समुदायमें जाता है, वहाँ वह अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन नहीं करता, प्रत्युत आलस्य-प्रमादमें अपना समय बरबाद करता है। वास्तवमें कामकी कमी नहीं है, प्रत्युत काम करनेवालोंकी कमी है। काम बहुत है, पर ईमानदारीसे तत्परतापूर्वक काम करनेवाले कम हैं। कोई ईमानदार आदमी हो और उसको काम न मिले—ऐसा हो ही नहीं सकता। आलस्य, प्रमाद, काम करनेकी नीयत न होना आदि दोष होनेपर ही उसको काम नहीं मिलता।

प्रश्न—आज महँगाईके जमानेमें अधिक सन्तान होगी तो उनका पालन-पोषण आदि कैसे करेंगे ?

उत्तर—आप विचार करें कि आवश्यकता ही आविष्कारकी जननी है; अतः जनसंख्या बढ़ेगी, सन्तान अधिक होगी तो उसके पालन पोषणकी व्यवस्था भी जरूर होगी। पहले जमानेमें हमारी यह देखी हुई बात है कि जिस वर्ष टिड्डियाँ अधिक आती थीं, उस वर्ष खेती अच्छी होती थी, अकाल नहीं पड़ता था। टिड्डियोंके आनेपर लोग उत्साहसे कहते थे कि इस बार वर्षा अधिक होगी; क्योंकि इतने जन्तु आये हैं तो उनके भोजनकी व्यवस्था (खेती) भी अधिक होगी। भगवान्‌की जो व्यवस्था पहले थी, वह आज भी जरूर होगी। आप परिवार-नियोजन करते हैं और व्यवस्थाका भार अपनेपर लेते हैं, इसीका यह परिणाम है कि आज व्यवस्था करनेमें मुश्किल हो रही है। अतः आप अपनेपर भार मत लो और अपने

कर्तव्यमें तत्पर रहो तो आपके और परिवारके पालन-पोषणकी व्यवस्था भगवान्‌की तरफसे जरूर होगी।

पहले राजा महाराजाओंके यहाँ हजारों सन्तानें पैदा होती थीं और उनका पालन-पोषण भी होता था। जैसे, राजा सगरके साठ हजार पुत्र थे। राजा अग्रसेनके अनेक पुत्र हुए, जिनके वंशज आज अग्रवाल कहलाते हैं। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे। इस प्रकार एक-एक आदमीकी सैकड़ों, हजारों सन्तानें हुई हैं। कोई जानना चाहे तो मैं बता सकता हूँ कि गाँव के-गाँव एक-एक आदमीकी सन्तानोंसे बसे हुए हैं।

यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जो वास्तवमें विरक्त सन्त होते हैं, जो अपने निर्वाहकी परवाह ही नहीं करते, चेष्टा ही नहीं करते, उनके निर्वाहकी व्यवस्था जनता करती है। जो अपने निर्वाहके लिये चेष्टा करते हैं, उनकी अपेक्षा उन विरक्त सन्तोंके निर्वाहका प्रबन्ध अच्छा होता है।

आप थोड़ा विचार करें; जो मुसलमान भाई हैं, वे चार-चार विवाह करते हैं। हमने सुना है कि एक भाईकी डेढ़ सौ सन्तानें हुईं; और एक भाईके उन्नीस बालक हुए, उनमेंसे दो मर गये और सत्रह मौजूद हैं। इस प्रकार वे प्रायः परिवार-नियोजन नहीं करते, फिर भी उनकी सन्तानका पालन-पोषण हो रहा है। क्या केवल हिन्दू ही अन्न खाते हैं, कपड़े पहनते हैं, पढ़ाई करते हैं? दूसरे लोग क्या अन्न नहीं खाते, कपड़े नहीं पहनते, पढ़ाई नहीं करते? मुसलमान भाई तो कहते हैं कि सन्तान होना खुदाका विधान है, उसको बदलनेका अधिकार मनुष्यको नहीं है। जो उसके विधानको बदलते हैं, वे अनधिकार चेष्टा करते हैं। वास्तवमें परिवार-नियोजन करनेवालोंकी जनसंख्या कम हो जाती है। अतः मुसलमानोंने यह सोचा कि परिवार-नियोजन नहीं करेंगे तो अपनी जनसंख्या बढ़ेगी और जनसंख्या बढ़नेसे अपना ही राज्य हो जायगा; क्योंकि वोटोंका जमाना है। इसलिये वे केवल अपनी संख्या बढ़ानेकी धुनमें हैं। परंतु हिन्दू केवल अपनी

थोड़ी सी सुख सुविधाके लिये नसबन्दी, गर्भपात आदि महापाप करनेमें लगे हुए हैं अपनी संख्या तेजीसे कम हो रही है—इस तरफ भी उनकी दृष्टि नहीं है और परलोकमें इस महापापका भयंकर दण्ड भोगना पड़ेगा—इस तरफ भी उनकी दृष्टि नहीं है। केवल खाने-पीने, सुख भोगनेकी तरफ तो पशुओंकी भी दृष्टि रहती है। अगर यही दृष्टि मनुष्यकी भी है तो यह मनुष्यता नहीं है।

हिन्दू धर्ममें मनुष्य जन्मको दुर्लभ बताया गया है और कल्याणको सुगम बताया गया है। अतः कोई जीव मनुष्य-जन्ममें, हिन्दू-धर्ममें आ रहा हो तो उसको रोकना नहीं चाहिये। अगर आप उसको रोक दोगे तो वह जीव विधर्मियोंके यहाँ पैदा होगा और आपके धर्मका, हिन्दुओंका नाश करेगा; क्योंकि जीवका ऋणानुबन्ध केवल एकके साथ नहीं होता, प्रत्युत कइयोंके साथ होता है।

कौरव और पाण्डव—दोनोंकी नौ-नौ अक्षौहिणी सेनाएँ थीं। परंतु एक अक्षौहिणी नारायणी सेना और एक अक्षौहिणी शल्यकी सेना कौरवोंकी तरफ चली जानेसे कौरवोंकी सेना पाण्डवोंकी सेनासे चार अक्षौहिणी बढ़ गयी अर्थात् पाण्डवोंकी सेना सात अक्षौहिणी और कौरवोंकी सेना ग्यारह अक्षौहिणी हो गयी! इसी प्रकार हिन्दूलोग नसबन्दी, आपरेशन आदिके द्वारा सन्तति-निरोध करेंगे तो जो सन्तान उनके यहाँ पैदा होनेवाली थी, वह विधर्मियोंके यहाँ पैदा हो जायगी। जैसे, अबतक हिन्दुओंके यहाँ लगभग बारह करोड़ शिशुओंका जन्म रोका गया है*। अतः वे बारह करोड़ शिशु गोघातक विधर्मियोंके यहाँ जन्म लेंगे तो विधर्मियोंकी संख्या हिन्दुओंकी संख्यासे चौबीस करोड़ बढ़ जायगी। विधर्मियोंकी

* जिन व्यक्तियोंने सन्तति निरोध किया है, उनकी आगे होनेवाली कई सन्तानोंका भी स्वतः निरोध हुआ है। अगर प्रत्येक व्यक्तिकी आगे होनेवाली दो या तीन सन्तानोंका भी निरोध माना जाय तो यह संख्या चौबीस या छत्तीस करोड़तक पहुँच जाती है!

संख्या बढ़ेगी तो फिर वे हिन्दुओंका ही नाश करेंगे। अतः हिन्दुओंको अपनी सन्तान-परम्परा नष्ट नहीं करनी चाहिये और गोघातकोंकी संख्या बढ़ाकर गोहत्याके पापमें भागीदार नहीं बनना चाहिये।

प्रश्न—सन्तान कम होगी तो उनका पालन-पोषण भी अच्छा होगा और परिवार भी सुखी रहेगा; अतः परिवार-नियोजन करनेमें हानि क्या है?

उत्तर—कम सन्तानसे परिवार सुखी रहेगा—यह बात नहीं है। जिनकी सन्तान नहीं है, वे भी दुःखी हैं; जिनकी सन्तान कम है, वे भी दुःखी हैं; और जिनकी अधिक सन्तान हैं, वे भी दुःखी हैं। हमने बिना सन्तानवालोंको भी देखा है, थोड़ी सन्तान-वालोंको भी देखा है और अधिक सन्तानवालोंको भी देखा है तथा उनसे हमारी बातें हुई हैं। वास्तवमें सन्तानका ज्यादा-कम होना सुख-दुःखमें कारण नहीं है। जो कम सन्तान होनेके कारण सुखी हो, ऐसा आदमी संसारमें एक भी हो तो बताओ। संसारमें क्या, सृष्टिमें भी नहीं है! दुःखका कारण है—भोगपरायणता—'**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते**' (गीता ५। २२)। भोगपरायण आदमी कभी सुखी हो सकता ही नहीं, सम्भव ही नहीं। जो भोगपरायण है, उसकी सन्तान चाहे ज्यादा हो, चाहे कम हो, चाहे बिलकुल न हो, वह तो दुःखी रहेगा ही।

विवाहके बाद आरम्भमें स्त्रीका पुरुषके प्रति और पुरुषका स्त्रीके प्रति विशेष आकर्षण रहता है, इसलिये पहली जो सन्तान होती है, वह केवल भोगेच्छासे ही होती है। भोगेच्छासे पैदा हुई सन्तान प्रायः अच्छी नहीं होती, भोगी होती है। आज जितना भी अच्छे भावोंका प्रचार हुआ है, समाजका सुधार हुआ है, वह सब अच्छे व्यक्तियोंके द्वारा ही हुआ है। क्या भोगी, लोलुप, चोर, डकैत व्यक्तियोंके द्वारा समाजका कभी सुधार हुआ है? और क्या उनके द्वारा समाजका सुधार होनेकी सम्भावना है? अतः सन्तान

कम होनेसे प्रायः भोगी सन्तान ही पैदा होगी, जिससे समाजका पतन ही होगा।

प्रश्न—भगवान् राम और भरत आदिने भी परिवार-नियोजन किया था—*'दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए'* और *'दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे'* (मानस, उत्तर० २५।३-४)। अतः अब भी दो ही संतान रखें तो क्या हानि है?

उत्तर—किसी भी रामायणमें यह नहीं आया है कि श्रीरामने नसबन्दी करायी थी, सीताजीने आपरेशन कराया था। यह नसबन्दी, आपरेशन आदि तो हमारे देखते-देखते अभी शुरू हुआ है। यह विदेशी काम है, हमारे देशका काम नहीं है। राम, भरत आदि खुद भी चार भाई थे। भगवान् कृष्णकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंमें प्रत्येकके दस दस पुत्र और एक-एक कन्या हुई थी। किसी किसीकी स्वाभाविक ही सन्तान कम होती है और किसी-किसीकी स्वाभाविक ही सन्तान ज्यादा होती है।

प्रश्न—सन्तान अधिक पैदा करेंगे तो उसके पालन-पोषणमें ही सारा समय चला जायगा, फिर भगवान्‌का भजन कैसे करेंगे?

उत्तर—हमारा आशय यह नहीं है कि आप सन्तान अधिक पैदा करें, प्रत्युत हमारा आशय है कि आप कृत्रिम उपायोंसे सन्तति-निरोध करके थोड़े-से सुखके लिये अपने शरीर, बल, उत्साह आदिका नाश मत करें। खेती तो करेंगे, हल तो चलायेंगे, पर बीज नहीं बोयेंगे—यह कोई बुद्धिमानी है? **'हतं मैथुनमप्रजम्'**—सन्तान पैदा न हो तो स्त्रीका संग करना व्यर्थ है अतः हमारा आशय यही है कि आप इन्द्रियोंके गुलाम न बनें, उनके परवश न रहें, प्रत्युत स्वतन्त्र रहें।

प्रश्न—अधिक सन्तान चाहते नहीं और संयम हो पाता नहीं, ऐसी अवस्थामें क्या करें?

उत्तर—ऐसी बात नहीं है। अगर आप संयम करना चाहते

हैं तो संयम अवश्य हो सकता है। मैंने बहुत समय पहले 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' नामक एक पुस्तक पढ़ी थी। उसके लेखक शिवानन्द नामके व्यक्ति थे। उन्होंने उस पुस्तकमें लिखा था कि 'मैं विवाहित हूँ; परंतु दोनोंने (मैंने और स्त्रीने) सलाह करके ब्रह्मचर्यका पालन किया, जिससे मुझे बहुत लाभ हुआ। वह लाभ सबको हो जाय, इसलिये मैंने यह पुस्तक लिखी है।' एक माताजीने हमें सुनाया कि हमारे पड़ोसमें एक जैन परिवार था। रोज रातमें उनके बोलनेकी आवाज आती थी। एक दिन मैंने उनसे पूछा कि आपलोग रातमें बातें करते हैं, सोते नहीं हैं क्या? उन्होंने अपनी बात सुनायी कि विवाहके पहले ही हम दोनोंमेंसे एकने कृष्णपक्षमें और एकने शुक्लपक्षमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी सौगन्ध ले ली थी। अब तीसरा पक्ष कहाँसे लायें? अतः एक कमरेमें रहनेपर भी हम आपसमें धर्मकी चर्चा किया करते हैं। तात्पर्य है कि आप गृहस्थमें रहते हुए संयम कर सकते हैं। आप उत्साह रखें, हिम्मत मत हारें कि हमारेसे संयम नहीं होता। आप संयम नहीं करेंगे तो कौन करेगा? हिम्मत रखनेसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है—

हिम्मत मत छाँड़ो नराँ, मुख ते कहताँ राम।
हरिया हिम्मत से किया, ध्रुव का अटल धाम॥

अतः उत्साह रखें, भगवान्‌का भरोसा रखें और उनसे प्रार्थना करें कि 'हे नाथ! हम संयम रखनेका नियम लेते हैं, आप शक्ति दो।' इस प्रकार आप जितने तत्पर रहेंगे, भगवान्‌का भरोसा रखेंगे, उतना ही आपको अलौकिक चमत्कार देखनेको मिलेगा, करके देख लें।

पहले जमानेमें नसबन्दी, आपरेशन आदि नहीं होते थे। उस जमानेमें लोग संयम रखते थे तो अब भी संयम रखना चाहिये। वर्तमानमें जो संयम आदि गुणोंको, दैवी-सम्पत्तिको अपनेमें

लानेमें कठिनताका अनुभव होता है, उसका कारण यह है कि पहले असंयम आदिका, आसुरी-सम्पत्तिका स्वभाव बना लिया है।

विचार करें कि सत्य बोलनेवाला व्यक्ति है, उससे कहा जाय कि हम आपको एक हजार रुपये देते हैं, आप झूठ बोल दें तो वह झूठ नहीं बोलेगा। परंतु जो झूठ-सचका खयाल नहीं रखते, उनसे कहा जाय कि हम आपको पाँच रुपये देंगे, आप सच्ची बात बोल दें तो वे सच्ची बात बोल देंगे। जो मांस नहीं खाते, उनसे कहा जाय कि हम आपको एक हजार रुपये देंगे, आप मांस खाओ तो वे मर जायँगे, पर मांस नहीं खायँगे। परंतु जो मांस खाते हैं, उनसे कहा जाय कि आप मांस-मछली मत खाओ, और जगह भोजन न करके केवल हमारे यहाँ ही शाकाहार भोजन करो तो हम आपको रोज एक रुपया देंगे तो वे महीनेभर आपके यहाँ भोजन कर लेंगे। किसीको मदिरा आदिका व्यसन नहीं है, उनको भय, लोभ आदि दिखाकर मदिरा पीनेके लिये कहा जाय तो वे मदिरा नहीं पी सकते। परंतु जिनको मदिरा पीनेका व्यसन है, वे भी सन्त-महात्माओंके संगमें आकर, नीरोगता आदिके लोभमें आकर व्यसन छोड़ देते हैं। तात्पर्य है कि सच बोलना, मांस मदिराका त्याग करना तो सुगम है, पर झूठ बोलना, मांस-मदिराका सेवन करना कठिन है। उसी प्रकार संयमका त्याग करना कठिन है, संयम करना कठिन नहीं है। यह अनुभवसिद्ध बात है।

एक बात और है कि संयम स्वतःसिद्ध है और असंयम कृत्रिम है, बनावटी है। स्वतःसिद्ध बात कठिन क्यों लगती है— इसपर थोड़ा ध्यान दें. जो लोग संयमका त्याग करके अपना जीवन असंयमी बना लेते हैं, उनके लिये फिर संयम करना कठिन हो जाता है। अगर पहलेसे ही संयमित जीवन रखा जाय

तो दुर्व्यसनोंका, दुर्गुणोंका त्याग होनेसे मनुष्यमें शूरवीरता, उत्साह रहता है, शान्ति रहती है। संयम करनेसे जितनी प्रसन्नता, नीरोगता, बल, धैर्य, उत्साह रहता है, उतना असंयम करनेसे नहीं रहता। आप कुछ दिनोंके लिये अच्छे संगमें रहें और संयम करें तो आपको इसका अनुभव हो जायगा कि संयमसे कितना लाभ होता है! संसारमें जितने रोग हैं, वे सब प्रायः असंयमसे ही होते हैं। प्रारब्धजन्य रोग बहुत कम होते हैं। संयमी पुरुषोंको रोग बहुत कम होते हैं। संयमी पुरुष बेफिक्र रहता है, जबकि असंयमी पुरुषमें चिन्ता, भय आदि बहुत ज्यादा होते हैं। जैसे, असंयमी रावण जब सीताको लानेके लिये जाता है, तब वह डरके मारे इधर-उधर देखता है—*'सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥'* (मानस, अरण्य० २८।५)। परंतु संयमी सीता राक्षसोंकी नगरीमें और राक्षसोंके बीच बैठकर भी निर्भय है! अकेली और स्त्री-जाति होनेपर भी उसको किसीसे भय नहीं है। यहाँतक कि वह रावणको भी अधम, निर्लज्ज आदि कहकर फटकार देती है—*'सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥'* (मानस, सुन्दर० ९।५)।

हमारे शास्त्रोंमें ब्रह्मचर्यका बड़ा माहात्म्य है और विदेशी सज्जनोंने भी इसका आदर किया है। उन्होंने कहा है कि जीवनभरमें पुरुष एक ही बार अपनी स्त्रीका संग करे। एक बारमें न रह सके तो वर्षमें एक बार करे। वर्षमें एक बार भी न रह सके तो महीनेमें एक बार संग करे अर्थात् केवल ऋतुगामी बने। इसमें भी न रह सके तो अपने कफनका कपड़ा खरीदकर रख ले! कारण कि बार बार संग करनेसे आयु जल्दी नष्ट होती है और मनुष्य जल्दी (अल्पायुमें) मरता है। ऐसे तो अल्पायुमें मरनेके अनेक कारण हैं, पर उनमें वीर्य-नाश करना खास कारण है। अतः दीर्घायु होनेके लिये, स्वास्थ्यके लिये, नीरोग रहनेके लिये

ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत आवश्यक है। सिंह जीवनभरमें केवल एक ही बार सिंहनीका संग करता है*। अतः उसमें वीर्यकी रक्षा अधिक होनेसे विशेष ओजबल रहता है, जिससे वह अपनेसे अत्यन्त बड़े हाथीको भी मार देता है। परंतु जो मनुष्य बार-बार स्त्रीका संग करता है, उसमें वह ओजबल नहीं आता, प्रत्युत निर्बलता आती है। ओजबल ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही उत्पन्न होता है।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे बड़े-बड़े रोग आक्रमण नहीं करते। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालोंकी सन्तान तेजस्वी और नीरोग होती है। परंतु ब्रह्मचर्य पालन न करनेवालोंकी सन्तान तेजस्वी और नीरोग नहीं होती; क्योंकि बार बार संग करनेसे रज-वीर्यमें वह शक्ति नहीं रहती। भोगासक्तिसे जो सन्तान पैदा होती है, वह भोगी और रोगी ही होती है। अतः धर्मको प्रधानता देकर ही सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये, जिससे सन्तान धर्मात्मा, नीरोग पैदा हो। भगवान्‌ने भी धर्मपूर्वक कामको अपना स्वरूप बताया है—'**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥**' (गीता ७। ११)।

जो केवल शास्त्रमर्यादाके अनुसार सन्तानोत्पत्तिके लिये ऋतुकालमें अपनी स्त्रीका संग करता है, वह गृहस्थमें रहता हुआ भी ब्रह्मचारी माना जाता है। परंतु जो केवल भोगेच्छा, सुखेच्छासे अपनी स्त्रीका संग करता है, वह पाप करता है। गीताने विषय-भोगोंके चिन्तनमात्रसे पतन होना बताया है (२। ६२-६३) और कामको सम्पूर्ण पापोंका मूल तथा नरकोंका दरवाजा बताया है (३। ३६, १६। २१)। तात्पर्य है कि भोगेच्छासे अपनी स्त्रीका संग करना नरकोंका दरवाजा है; पापोंका, अनर्थोंका कारण है।

* सिंह गमन, सज्जन बचन, कदलि फलै इक बार।
तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

पक्का विचार होनेपर ब्रह्मचर्यका पालन करना कठिन नहीं है। ब्रह्मचर्यका पालन मनुष्यके लिये खास बात है। अगर मनुष्य संयम नहीं करता तो वह पशुओंसे भी गया-बीता है। पशुओंमें गधा, कुत्ता नीच माना जाता है। परंतु वर्षमें एक महीना ही उनकी ऋतु होती है। उस महीनेमें उनकी रक्षा की जाय तो उनका संयम हो जाता है। जैसे, श्रावण मासमें गधेकी, कार्तिक मासमें कुत्तेकी और माघ मासमें बिल्लीकी रक्षा की जाय, उनसे ब्रह्मचर्यका पालन कराया जाय तो उनका संयम हो जाता है। परंतु मनुष्यके लिये बारह महीने खुले हैं, अत: दूसरा कोई उनकी रक्षा नहीं कर सकता, वह खुद ही चाहे तो अपनी रक्षा कर सकता है। इसीलिये शास्त्रोंमें मनुष्यको ब्रह्मचर्य-पालनकी आज्ञा दी गयी है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति हो जाती है, महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न—पुरुष तो संयम रखे, पर स्त्री संयम न रखे तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—यह बात नहीं है कि स्त्री संयम न रखे। वास्तवमें पुरुष ही स्त्रीको बिगाड़ता है। स्त्रियोंमें काम-वेगको रोकनेकी जितनी शक्ति होती है, उतनी पुरुषोंमें नहीं होती।

अगर पहलेसे ही संयम रखा जाय तो संयम सुगमतासे होता है। भोगवृत्ति ज्यादा होनेपर संयम रखना कठिन हो जाता है। अत: जब कामका वेग न हो, तब स्त्री-पुरुष दोनोंको शान्तचित्त होकर विचार करना चाहिये कि हम अधिक सन्तान नहीं चाहते तो हमें संयम रखना चाहिये, जिससे हमारा शरीर, स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। ऐसा विचार करके दोनोंको रात्रिमें अलग-अलग रहना चाहिये।

मनुष्य संयम तो सदा रख सकता है, पर भोग सदा नहीं कर सकता—यह स्वत:सिद्ध बात है। अत: संयमके विषयमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिये और गर्भपात, नसबन्दी-जैसे महापापसे बचना चाहिये।

जबतक यह हिन्दू-समाज गर्भपात जैसे महापापसे नहीं बचेगा, तबतक इसका उद्धार मुश्किल है; क्योंकि अपना पाप ही अपने आपको खा जाता है। अगर यह समुदाय अपनी उन्नति और वृद्धि चाहता है तो इस घोर महापापसे, ब्रह्महत्यासे दुगुने पापसे बचना चाहिये। एक भाईने हमें बताया कि गत वर्ष भारतमें लगभग इक्कीस लाख गर्भपात किये गये! ऐसी लोक परलोकको नष्ट करनेवाली महान् हत्यासे समाजकी क्या गति होगी, इसे भगवान् ही जाने! धर्मपरायण भारतमें कितना धर्मविरुद्ध काम हो रहा है, इसका कोई पारावार नहीं है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर निकलेगा, इसलिये समय रहते चेत जाना चाहिये—

'का बरषा सब कृषी सुखानें।
समय चुकें पुनि का पछितानें॥'

हमारा उद्देश्य किसीकी निन्दा करना, किसीको नीचा दिखाना है ही नहीं। हमारा यह कहना है कि मनुष्य शरीरमें आकर कम से कम गर्भपात-जैसे महापापोंसे तो बचें।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(मानस, उत्तर० ४३।४)

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४।३)

'दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः'

(श्रीमद्भा० ११।२।२९)

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।

(श्रीमद्भा० ११।९।२९)

—इस प्रकार जिस मनुष्य शरीरको इतना दुर्लभ बताया गया है, उस मनुष्य-शरीरमें जीवको न आने देना, जीवको ऐसा दुर्लभ शरीर न मिलने देना कितना महान् पाप है! ऐसे महापापसे बचो।

~~~o~~~

(७) लड़ाई-झगड़ेका समाधान

प्रश्न—परिवारमें झगड़ा, कलह, अशान्ति आदि होनेका क्या कारण है?

उत्तर—हरेक प्राणी अपने मनकी कराना चाहता है, अपनी अनुकूलता चाहता है, अपना सुख-आराम चाहता है, अपनी महिमा चाहता है, अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है—ऐसे व्यक्तिगत स्वार्थके कारण ही परिवारमें झगड़ा, कलह, अशान्ति आदि होते हैं। जैसे, कुत्ते आपसमें बड़े प्रेमसे खेलते हैं, पर रोटीका टुकड़ा सामने आते ही लड़ाई शुरू हो जाती है; अतः लड़ाईका कारण रोटीका टुकड़ा नहीं है, प्रत्युत व्यक्तिगत स्वार्थ है।

कुटुम्बमें जो केवल अपना सुख-आराम चाहता है, वह कुटुम्बी नहीं होता, प्रत्युत एक व्यक्ति होता है। कुटुम्बी वही होता है, जो कुटुम्बमें बड़े, छोटे और समान अवस्थावाले—सबका हित चाहता है और हित करता है। अतः जो कुटुम्बमें शान्ति चाहता है, कलह नहीं चाहता, उसको अपना कर्तव्य और दूसरोंका अधिकार देखना चाहिये अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये और दूसरोंका हित करना चाहिये, आदर-सत्कार, सुख-आराम देना चाहिये।
~~~

प्रश्न—भाई-भाई आपसमें लड़ें तो माता पिताको क्या करना चाहिये?

उत्तर—माता-पिताको न्यायकी बात कहनी चाहिये। वे छोटे पुत्रसे कहें कि तुम भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको देखो कि वे रामजीके साथ कैसा बर्ताव करते थे; भीम, अर्जुन आदि अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके साथ कैसा बर्ताव करते थे। बड़े पुत्रसे कहें कि तुम रामजीको देखो कि उन्होंने अपने छोटे भाइयोंके साथ कैसा बर्ताव किया था*; और युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयोंके साथ कैसा बर्ताव करते थे। अतः तुम सब लोग उनके चरित्रोंको आदर्श मानकर अपने आचरणमें लाओ।

प्रश्न—बहन-भाई आपसमें लड़ें तो माता-पिताको क्या करना चाहिये?

उत्तर—माता-पिताको लड़कीका पक्ष लेना चाहिये; क्योंकि वह सुवासिनी है, दानकी पात्र है†, थोड़े दिन रहनेवाली है; अतः वह आदरणीय है। लड़का तो घरका मालिक है, घरमें ही रहनेवाला है। लड़केको एकान्तमें समझाना चाहिये कि 'बेटा! बहनका निरादर मत करो। यह यहाँ रहनेवाली नहीं है। यह तो अपने घर चली जायगी। तुम तो यहाँके मालिक हो।'

बहनको चाहिये कि वह भाईसे कुछ भी आशा न रखे। भाई जितना दे, उसमेंसे थोड़ा ही ले। उसको यह सोचना चाहिये कि भाईके घरसे लेनेसे हमारा काम थोड़े ही चलेगा, हमारा काम तो हमारे घरसे ही चलेगा।

---

* इसके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'तत्त्वचिन्तामणि' के दूसरे भागमें 'रामायणमें आदर्श भ्रातृप्रेम' नामक लेखको मननपूर्वक पढ़ना चाहिये।

† बहन, बेटी और भानजीको भोजन कराना ब्राह्मणको भोजन करानेके समान पुण्य माना गया है।

प्रश्न—बेटा और बहू आपसमें लड़ें तो माता-पिताका क्या कर्तव्य होता है?

उत्तर—माता-पिता उन दोनोंको समझायें कि हम कबतक बैठे रहेंगे? इस घरके मालिक तो आप ही हो। यदि आप ही परस्पर लड़ोगे तो इस कुटुम्बका पालन कौन करेगा? क्योंकि भार तो सब आपपर ही है।

बेटेको अलगसे समझाना चाहिये कि बेटा! तुम्हारे लिये ही तुम्हारी पत्नीने अपने माता-पिता आदि सबका त्याग किया है। तुम तो अपने बापकी गद्दीपर बैठे हुए हो, तुमने क्या त्याग किया? अतः ऐसी त्यागमूर्ति स्त्रीको तन, मन, धन आदिसे प्रसन्न रखना, उसका पालन करना तुम्हारा खास कर्तव्य है। पर हाँ, यह याद रखना कि तुम पति हो; अतः स्त्रीकी दासतामें मत फँसना, उसका गुलाम मत बनना। जिसमें उसका हित हो, आसक्तिरहित होकर वही कार्य करो। मनुष्यमात्रका यह कर्तव्य है कि वह जीवमात्रका हित करे। तुम एक पत्नीका भी हित नहीं करोगे तो क्या करोगे?

पुत्रवधूको समझाना चाहिये कि बेटी! तुमने केवल पतिके लिये अपने माता-पिता, भाई-भौजाई, भतीजे आदि सबका त्याग कर दिया, अब उसको भी राजी नहीं रख सकती, उसकी भी सेवा नहीं कर सकती तो और क्या कर सकती हो। कोई समुद्र तर जाय, पर किनारेपर आकर डूब जाय तो यह कितनी शर्मकी बात है! तुमको तो एक ही व्रत निभाना है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

(मानस, अरण्य० ५।४)

प्रश्न—ननद (लड़की) और भौजाई (बहू) आपसमें लड़ें तो माता-पिताको क्या करना चाहिये?

उत्तर—माँ लड़कीको समझाये कि 'देखो बेटी! यह (भौजाई) तो आजकलकी छोरी है। यह कुछ भी कह दे, तुम

बड़ी समझकर इसका आदर करो। यह घरकी मालकिन है; अतः तुम मेरेसे भी बढ़कर विशेषतासे इसका आदर करो। मेरा आदर कम करोगी तो मैं जल्दी नाराज नहीं होऊँगी; क्योंकि मेरी कन्या होनेके नाते मेरे साथ तुम्हारी ममता है।'

भौजाईको चाहिये कि वह ननदका ज्यादा आदर करे; क्योंकि वह अतिथिकी तरह आयी है। वह ननदके बच्चोंको अपने बच्चोंसे भी ज्यादा प्यार करे*। बच्चे राजी होनेसे उनकी माँ भी राजी हो जाती है—यह सिद्धान्त है। इस तरह ननदको राजी रखना चाहिये। दूसरेंको राजी रखना अपने कल्याणमें कारण है।

बेटीमें मोह होनेके कारण माँ बेटीको कुछ देना चाहे तो बेटीको नहीं लेना चाहिये। बेटीको माँसे कहना चाहिये कि 'मेरी भौजाई देगी, तभी मैं लूँगी। अगर तू देगी तो भौजाईको बुरा लगेगा और वह आपसे लड़ेगी तो मैं कलह कराने यहाँ थोड़े ही आयी हूँ! माँ! तेरेसे लूँगी तो थोड़े ही दिन मिलेगा, पर भौजाईके हाथसे लूँगी तो बहुत दिनतक मिलता रहेगा। अतः त्यागदृष्टिसे, व्यवहारदृष्टिसे और स्वार्थदृष्टिसे भौजाईके हाथसे लेना ही अच्छा है।'

प्रश्न—बड़ा भाई माता-पितासे लड़े तो छोटे भाइयोंका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—छोटे भाई बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना करें कि 'भाई साहब! आप ऐसा बर्ताव करोगे तो हमलोग किसको आदर्श मानेंगे? अतः आप हमलोगोंपर कृपा करके माँ-बापके साथ अच्छा-से अच्छा बर्ताव करो। ऐसा करनेसे

* बहूको एक नम्बरमें (सबसे अधिक) ननदके बच्चोंको लाड़-प्यार करना चाहिये। ऐसे ही दूसरे नम्बरमें देवरानीके बच्चोंको, तीसरे नम्बरमें जेठानीके बच्चोंको, चौथे नम्बरमें सासके बच्चोंको और पाँचवें नम्बरमें अपने बच्चोंको लाड़-प्यार करना चाहिये।

आपको दो प्रकारसे लाभ होगा, एक तो आपके अच्छे बर्तावका कुटुम्बपर, मोहल्लेपर अच्छा असर पड़ेगा और दूसरा, आपके आचरणोंको देखकर हमलोग भी वैसा ही आचरण करेंगे, जिसका आपको पुण्य होगा। अतः आपका आचरण आदर्श होना चाहिये। हम तो आपसे केवल प्रार्थना ही कर सकते हैं; क्योंकि आप हमारे पिताके समान हैं।'

प्रश्न—छोटे भाई माता-पितासे लड़ें तो बड़े भाईका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—बड़ा भाई छोटे भाइयोंको समझाये कि 'देखो भाई! मैं और आप सब बालक हैं। माता-पिता हमारे लिये सर्वथा आदरणीय हैं, पूज्य हैं। जिस शरीरसे हम भगवत्प्राप्ति कर सकते हैं, वह हमें माता-पिताकी कृपासे ही मिला है। हम उनके ऋणसे कभी मुक्त नहीं हो सकते। हाँ, हम उनके अनुकूल होंगे तो उनके राजी होनेसे वह ऋण माफ हो सकता है। हम अपने चमड़ेकी जूती बनाकर माता-पिताको पहना दें तो भी उनका ऋण नहीं चुका सकते; क्योंकि वह चमड़ा आया कहाँसे? उनकी वस्तु ही उनको दी है, हमने अपना क्या दिया? उनकी वस्तुको हम अपना मानते हैं, यही गलती है। वे हमारेको चाहे जैसा रखें, उनका हमपर पूरा अधिकार है।'

प्रश्न—बहन माता-पितासे लड़े तो भाईका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—भाई न्याय देखे और न्यायमें भी वह बहनका पक्ष ले और माता-पितासे कहे कि यह तो अतिथिकी तरह आयी है। इसका लाड़-प्यार करना चाहिये। परंतु बहनका अन्याय हो तो बहनको एकान्तमें समझाये कि बहन! आपसमें प्रेमकी ही महिमा है, कलहकी नहीं। माँ-बाप आदरणीय हैं। अतः तुम और हम सब माँ-बापका आदर करें। तुच्छ चीजोंके लिये उनका निरादर क्यों करें?

प्रश्न—छोटा भाई भौजाईसे लड़े तो बड़े भाईका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—बड़ा भाई छोटे भाईको धमकाये कि 'तुम क्या कर रहे हो ? शास्त्रकी दृष्टिसे बड़े भाईकी स्त्री माँके समान होती है। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नने सीताजीके साथ कैसा बर्ताव किया था; उनके चरित्रोंको बार-बार पढ़ो और मनन करो, जिससे तुम्हारे भीतर निर्मल भाव पैदा होंगे, तुम्हारी बुद्धि स्वाभाविक ही शुद्ध हो जायगी।'

प्रश्न—जेठानी और देवरानी आपसमें लड़ें तो भाइयोंको क्या करना चाहिये ?

उत्तर—वे अपनी-अपनी स्त्रीको समझायें। छोटा भाई अपनी स्त्रीको समझाये कि 'देखो! तुम्हें मेरे बड़े भाईको पिताके समान और भौजाईको माँके समान समझकर उनका आदर करना चाहिये।' बड़ा भाई अपनी स्त्रीको समझाये कि 'तुम्हारे लिये मेरा छोटा भाई पुत्रके समान और उसकी स्त्री पुत्रीके समान है; अतः तुम्हें उनको प्यार करना चाहिये। उसकी स्त्री कुछ भी कह दे, तुम्हें उसको क्षमा कर देना चाहिये; क्योंकि तुम बड़ी हो! अगर तुम उसकी बात नहीं सहोगी तो तुम्हारा दर्जा बड़ा कैसे हुआ ? उसकी बातोंको सहनेसे, उसको प्यार करनेसे ही तो दर्जा ऊँचा होगा! क्रोध करनेवाला अन्तमें हार जाता है और दूसरेके क्रोधको धैर्यपूर्वक सहनेवाला जीत जाता है।

दोनों भाइयोंको यह सावधानी रखनी चाहिये कि वे स्त्रियोंकी कलहको अपनेमें न लायें। स्त्रियोंमें सहनेकी शक्ति (स्वभाव) कम होती है; अतः भाइयोंको बड़ी सावधानीसे बर्ताव करना चाहिये, जिससे आपसमें खटपट न हो। अगर स्त्रियोंकी आपसमें बने ही नहीं तो अलग-अलग हो जाना चाहिये*, पर अलग-अलग भी प्रेमके लिये ही होना चाहिये।

* रोजानारी राड़ आपसकी आछी नहीं, बने जहाँतक बाड़ चटपट कीजै चाकरिया।

यदि अलग-अलग होकर भी आपसमें खटपट रहती है तो फिर अलग-अलग होनेसे क्या हुआ? अतः प्रेमके लिये ही साथ रहना है और प्रेमके लिये ही अलग होना है। अलग होनेपर अपने हिस्सेके लिये कलह भी नहीं होनी चाहिये। छोटे भाईको चाहिये कि बड़ा भाई जितना दे दे, उतना ही ले ले, पर बड़े भाईको चाहिये कि वह अपनी दृष्टिसे छोटे भाईको अधिक दे; क्योंकि वह छोटा है, प्यारका पात्र है। अपनी दृष्टिसे अधिक देनेपर भी यदि छोटा भाई (अपनी दृष्टिसे) ठीक न माने तो बड़े भाईको छोटे भाईकी दृष्टिका ही आदर करना चाहिये, अपनी दृष्टिका नहीं।

त्याग ही बड़ी चीज है। तुच्छ चीजोंके लिये राग-द्वेष करना बड़ी भारी भूल है; क्योंकि चीजें तो यहीं रह जायँगी, पर राग-द्वेष साथमें जायँगे। इसलिये मनुष्यको हरदम सावधान रहना चाहिये और अपने अन्तःकरणको कभी मैला नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—पुत्र आपसमें लड़ें तो भाइयोंको क्या करना चाहिये?

उत्तर—जहाँतक बने, अपने पुत्रका पक्ष न लें, भाईके पुत्रका पक्ष लें। यदि भाईके पुत्रका अन्याय हो तो उसको शान्तिसे समझाना चाहिये। तात्पर्य है कि अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करें तो सबके साथ अच्छा बर्ताव होगा।

प्रश्न—माँ और पत्नी (सास और बहू) आपसमें लड़ें तो पुत्रका क्या कर्तव्य होता है?

उत्तर—ऐसी स्थितिमें पुत्रके लिये बड़ी आफत होती है! वह अगर माँका पक्ष ले तो स्त्री रोने लग जाती है और स्त्रीका पक्ष ले तो माँ दुःखी हो जाती है कि यह तो स्त्रीका हो गया, मेरा नहीं रहा! ऐसे समयमें पुत्र तो विशेषतासे माँका ही आदर करे, माँकी ही बात रखे और स्त्रीको एकान्तमें समझाये कि 'मेरी माँके समान मेरे लिये और तेरे लिये भी पूजनीय, आदरणीय और कोई नहीं है। उसके समान हम दोनोंका हित करनेवाला और हित

चाहनेवाला भी और कोई नहीं है। माँ तेरेको खरी-खोटी सुना भी दे, तो भी भीतरसे वह कभी तेरा अहित नहीं चाहती, प्रत्युत सदा हित ही चाहती है। अगर तू मेरेको राजी रखना चाहती है तो माँको राजी रख। पुत्रको चाहिये कि वह स्त्रीके वशमें होकर, उसके कहनेमें आकर किसीसे कलह, लड़ाई, द्वेष न करे। स्त्रीके कहनेमें आकर माँ, बहन आदिका तिरस्कार, अपमान कर देना बहुत बड़ा अपराध है।

माँको भी एकान्तमें समझाये कि 'माँ! यह बेचारी अपने माँ-बाप, भाई भौजाई आदि सबको छोड़कर आयी है; अतः आप ही इसका लाड़ प्यार कर सकती हैं। इसका दुःख सुननेवाला दूसरा कौन है? यह अपने सुख-दुःखकी बात किससे कहे? आप ही इसकी माँ हैं। इसके द्वारा आपके मनके प्रतिकूल बर्ताव भी हो जाय तो भी सहन करके इसको निभाना चाहिये। हम दोनों ही इसका खयाल नहीं करेंगे तो यह कहाँ जायगी? अतः माँ, इसको क्षमा कर दें। मैंने बचपनमें कई बार आपकी गोदीमें टट्टी पेशाब कर दिया, पर आपने मेरेको अपना ही अंग मानकर मेरेपर कभी गुस्सा नहीं किया, प्रत्युत क्षमा कर दिया और उसको मेरा अपराध माना ही नहीं। ऐसे ही इसको अपना अंग समझकर क्षमा कर दें। जैसे दाँतोंसे जीभ कट जाय तो दाँतोंके साथ वैर नहीं होता, उनपर गुस्सा नहीं आता, ऐसे ही इसके द्वारा कोई अपकार भी हो जाय तो आपको गुस्सा नहीं आना चाहिये; क्योंकि यह आपका ही अंग है। जैसे मैं आपका अंग हूँ, ऐसे ही मेरा अंग होनेसे यह भी आपका ही अंग हुआ।'

प्रश्न—पत्नी और पुत्रवधू आपसमें लड़ें तो पति (ससुर)को क्या करना चाहिये?

उत्तर—पतिको चाहिये कि वह अपनी पत्नीको धमकाये और पुत्रवधूको आश्वासन दे कि मैं तुम्हारी सासको समझाऊँगा।

अपनी पत्नीको एकान्तमें समझाये कि 'देखो! तुम ही इसकी माँ हो। यह अपने माता-पिता, भाई-भौजाई आदि सबको छोड़कर हमारे घर आयी है। अतः तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम इसका अपनी पुत्रीकी तरह पालन करो, प्यार करो। यह अपने दुःखकी बात तुम्हारे सिवाय किसको कहेगी? अपना आधार, आश्रय किसको बनायेगी?'

पुत्रवधूको समझाना चाहिये कि 'देख बेटी! सास जो करती है बहूके हितके लिये ही करती है। पुत्र जन्मता है, तभीसे वह आशा रखती है कि मेरी बहू आयेगी, मेरा कहना करेगी, मेरी सेवा करेगी! ऐसी आशा रखनेवाली सास बहूका अहित कैसे कर सकती है? बचपना होनेके कारण, अपने मनके अनुकूल न होनेसे तेरेको सासकी बात बुरी लगती है। बेटी! तू अपने माँ-बाप आदि सबको छोड़कर यहाँ आयी है तो क्या एक सासको भी राजी नहीं रख सकती! सास कितने दिनकी है? यहाँकी मालकिन तो तुम ही हो। तुम दोनोंकी लड़ाई भले आदमी सुनेंगे तो इसमें दोष (गलती) तुम्हारा ही मानेंगे; जैसे—बड़े-बूढ़े और बालक आपसमें लड़ें तो दोष बच्चोंका ही माना जाता है, बड़े-बूढ़ोंका नहीं। अतः इन सब बातोंको खयालमें रखते हुए तुम्हें अपने व्यवहारका सुधार करना चाहिये, जिससे तुम्हारा व्यवहार सासको बुरा न लगे। कभी तुमसे कटु बर्ताव हो भी जाय तो सासके पैरोंमें पड़कर, रोकर क्षमा माँग लेनी चाहिये। इसका सासपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा, जिससे तुम दोनोंकी तथा घरकी शोभा होगी, घर सुखी होगा। एक तुम्हारे बिगड़नेसे पूरा घर अशान्त हो जायगा। घरकी अशान्तिका कारण तुम क्यों बनती हो? तुम बड़ोंकी आज्ञाका पालन करो; सुबह शाम बड़ोंके चरणोंमें पड़ो। सास कुछ भी कह दे, उसके सामने बोलो मत। जब वह शान्त हो जाय, तब अपने मनकी बात बड़ी शान्तिसे

उसको बता दो। वह माने तो ठीक, न माने तो ठीक, तुम्हारा कोई दोष नहीं रहेगा।'

प्रश्न—पिता और माता आपसमें लड़ें तो पुत्रका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—जहाँतक बने, पुत्रको माँका पक्ष लेना चाहिये; परन्तु पिताको इस बातका पता नहीं लगना चाहिये कि यह अपनी माँका पक्ष लेता है। पितासे कहना चाहिये कि 'पिताजी! आप हम सबके मालिक हैं। मेरी माँ कुछ भी कहेगी तो आपसे ही कहेगी। आपके सिवाय उसकी सुननेवाला कौन है? विवाहके समय आपने अग्नि और ब्राह्मणके सामने जो वचन दिये थे, उसका पालन करना चाहिये। माँ अपने दिये हुए वचन निभाती है या नहीं, इसका खयाल न करके आपको अपना ही कर्तव्य निभाना चाहिये। आप मर्यादा रखेंगे तो मेरे और मेरी माँके लोक-परलोक दोनों सुधर जायँगे, नहीं तो हम दोनों कहाँ जायँगे? आपके बिना हमारी क्या दशा होगी? मैं आपको शिक्षा नहीं दे रहा हूँ, केवल याद दिला रहा हूँ। मैं कुछ अनुचित भी कह दूँ तो आपको क्षमा कर देना चाहिये; क्योंकि आप बड़े हैं—*'क्षमा बड़नको चाहिये, छोटनको उत्पात। कहा विष्णुको घट गयो, जो भृगु मारी लात॥'* भृगुने लात मारी तो विष्णुभगवान्‌का घटा कुछ नहीं, प्रत्युत महिमा ही बढ़ी! अतः आप खुद सोचें। आपको मैं क्या समझाऊँ, आप खुद जानकार हैं।'

परिवारमें कलह न हो—इसके लिये प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारका त्याग करके दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करे। प्रत्येक व्यक्ति अपना आदर और सम्मान चाहता है; अतः दूसरोंको आदर और सम्मान देना चाहिये।

प्रश्न—सास पुत्रका पक्ष लेकर तंग करे तो बहूको क्या करना चाहिये?

उत्तर—बहूको यही समझना चाहिये कि ये तो घरके मालिक हैं। मैं तो दूसरे घरसे आयी हूँ। अतः ये कुछ भी कहें, कुछ भी करें मुझे तो वही करना है, जिससे ये राजी रहें। बहूको सासके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये, उससे द्वेष नहीं करना चाहिये। उसको अपने भावोंकी रक्षा करनी चाहिये, अपने भावोंको अशुद्ध नहीं होने देना चाहिये। उसको भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! इनको सद्‌बुद्धि दो और मेरेको सहिष्णुता दो।'

प्रश्न—पति और ससुर आपसमें लड़ें तो स्त्रीको क्या करना चाहिये?

उत्तर—स्त्रीका कर्तव्य है कि वह अपने पतिको समझाये; जैसे—'यहाँ जो कुछ है, वह सब पिताजीका ही है। आपको माँको भी पिताजी ही लाये हैं। धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, घर, वैभव आदि सब पिताजीका ही कमाया हुआ है। अतः उनका सब तरहसे आदर करना चाहिये। उनकी बात मानना न्याय है, धर्म है और आपका कर्तव्य है। कुछ भी लिखा-पढ़ी किये बिना आप उनकी सम्पत्तिके स्वतःसिद्ध उत्तराधिकारी हैं। अतः वे कुछ भी कहें, वह सब आपको मान्य होना चाहिये। आपको शरीर, मन, वाणी आदिसे सर्वथा उनका आदर करना चाहिये। वे कभी गुस्सेमें आकर कुछ कह भी दें तो आपको यही सोचना चाहिये कि उनके समान मेरा हित करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। अतः उनका चित्त कभी नहीं दुखाना चाहिये। मैं भी कुछ अनुचित कह दूँ तो आपको मेरी परवाह न करके पिताजीकी बातका ही आदर करना चाहिये।'

प्रश्न—पति और पुत्र आपसमें लड़ें तो स्त्रीको क्या करना चाहिये?

उत्तर—स्त्रीको तो पतिका ही पक्ष लेना चाहिये और पुत्रको

समझाना चाहिये कि 'बेटा! तुम्हारे पिताजी जो कुछ कहें, जो कुछ करें, पर वास्तवमें उनके हृदयमें स्वतः तुम्हारे प्रति हितका भाव है। वे कभी तुम्हारा अहित नहीं कर सकते और दूसरा कोई तुम्हारा अहित करे तो वे सह नहीं सकते। अतः इन भावोंका खयाल रखकर तुम्हें पिताजीकी सेवामें ही तत्पर रहना चाहिये। तुम मेरा आदर भले ही कम करो, पर पिताजीका आदर ज्यादा करो। वास्तवमें हमारे मालिक तो ये ही हैं। मेरा आदर तुम कम भी करोगे तो मैं नाराज नहीं होऊँगी, पर तुम्हारे पिताजी नाराज नहीं होने चाहिये। मैं भी उनको प्रसन्न रखना चाहती हूँ और तुम्हारा भी कर्तव्य है कि उनको प्रसन्न रखो।'

प्रश्न—पत्नी और पुत्र आपसमें लड़ें तो पुरुषका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—उसे पुत्रको समझाना चाहिये कि 'बेटा! माँको प्रसन्न रखना तुम्हारा विशेष कर्तव्य है। संसारमें जितने भी सम्बन्ध हैं, उन सबमें माँका सम्बन्ध ऊँचा है। अतः अपनी स्त्रीके वशीभूत होकर तुम्हें माँका चित्त नहीं दुखाना चाहिये।'

पत्नीसे कहना चाहिये कि 'तुमने इसको पेटमें रखा है, जन्म दिया है, अपना दूध पिलाया है। अपनी गोदमें टट्टी-पेशाब करनेपर भी तुमने इसपर कभी गुस्सा नहीं किया, प्रत्युत प्रसन्नतासे उत्साहपूर्वक कपड़े धोये। अब यह तुम्हें कुछ कड़ुआ भी बोल दे तो भी अपना प्यारा पुत्र मानकर इसको क्षमा कर दो; क्योंकि तुम माँ हो। पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं हो सकती—'**कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति**'।

प्रश्न—परिवारमें प्रेम और सुख-शान्ति कैसे रहे?

उत्तर—जब मनुष्य अपने उद्देश्यको भूल जाता है, तभी सब बाधाएँ, आफतें आती हैं। अगर वह अपने उद्देश्यको जाग्रत् रखे कि चाहे जो हो जाय, मुझे अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी

ही है, तो फिर वह सुख-दुःखको नहीं गिनता—'**मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥**' और अपने स्वार्थ एवं अभिमानका त्याग करनेमें उसको कोई कठिनाई भी नहीं होती। स्वार्थ और अभिमानका त्याग होनेसे व्यवहारमें कोई बाधा, अड़चन नहीं आती। व्यवहारमें, परस्पर प्रेम होनेमें बाधा तभी आती है, जब मनुष्य अपनी मूँछ रखना चाहता है, अपनी बात रखना चाहता है, अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है।

दूसरेका भला कैसे हो, उसका कल्याण कैसे हो, उसका आदर-सम्मान कैसे हो, उसको सुख-आराम कैसे मिले—यह बात जब आचरणमें आ जाती है, तब सब कुटुम्बी प्रसन्न हो जाते हैं। किसी समय कोई कुटुम्बी अप्रसन्न भी हो जाय तो उसकी अप्रसन्नता टिकेगी नहीं, स्थायी नहीं रहेगी; क्योंकि जब कभी वह अपने लिये ठीक विचार करेगा, तब उसकी समझमें आ जायगा कि मेरा हित इसी बातमें है। जैसे बालकको पढ़ाया जाय तो खेलकूदमें वृत्ति रहनेके कारण उसको पढ़ाई बुरी लगती है, पर परिणाममें उसका हित होता है। ऐसे ही कोई बात ठीक होते हुए भी किसीको बुरी लगती है तो उस समय भले ही उसकी समझमें न आये, पर भविष्यमें जरूर समझमें आयेगी। कदाचित् उसकी समझमें न भी आये तो भी हमें अपनी नीयत और आचरणपर सन्तोष होगा कि हम उसका भला चाहते हैं और हमारे भीतर एक बल रहेगा कि हमारी बात सच्ची और ठोस है।

आपसमें प्रेम रहनेसे ही परिवारमें सुख-शान्ति रहती है। प्रेम होता है अपने स्वार्थ और अभिमानके त्यागसे। जब स्वार्थ और अभिमान नहीं रहेगा, तब प्रेम नहीं होगा तो क्या होगा? दूसरा व्यक्ति अपने स्वार्थके वशीभूत होकर हमारे साथ कड़ुआ बर्ताव करता है तो कभी-कभी यह भाव पैदा होता है कि मैं तो इसके साथ अच्छा बर्ताव करता हूँ, फिर भी यह प्रसन्न नहीं हो

रहा है, मैं क्या करूँ ? ऐसा भाव होनेमें हमारी सूक्ष्म सुख-लोलुपता ही कारण है; क्योंकि दूसरे व्यक्तिके तत्काल सुखी, प्रसन्न होनेसे एक सुख मिलता है। अतः इस सुख-लोलुपताका पता लगते ही इसका त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि हमें केवल अपना कर्तव्य निभाना है, दूसरेका आदर करना है, उसके प्रति प्रेम करना है। हमारे भाव और आचरणका उसपर असर पड़ेगा ही। हाँ, अन्तःकरणमें कठोरता होनेके कारण उसपर असर न भी पड़े तो भी हमने अपनी तरफसे अच्छा किया—इस बातको लेकर हमें सन्तोष होगा। सन्तोष होनेसे हमारा प्रेम घटेगा नहीं और परिवारमें भी सुख-शान्ति रहेगी।